ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

जून २०१८

Date of Printing = 05-06-18

प्रकाशन दिनांक= 05-06-18

वर्ष ४७ : अङ्क ८

दयानन्दाब्द : १९४

विक्रम-संवत् : द्वि. ज्येष्ठ-आषाढ़ २०७५

सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११९

संस्थापक : **स्व० ला० दीपचन्द आर्य**

प्रकाशक व

सम्पादक : धर्मपाल आर्य

सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री

व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,

खारी बावली, दिल्ली-६

दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१

चलभाष : ९६५०५२२७७८

E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु०

वार्षिक शुल्क ५०) रुपये

आजीवन सदस्यता ५००) रुपये

विदेश में २०००) रुपये

इस अंक में

- ❑ हे मानव! नारी के सम्मान में..... २
- ❑ वेदोपदेश ३
- ❑ भारतीय राजनीति और जिन्ना ५
- ❑ सबका आदिमूल..... ८
- ❑ पौराणिक कथाओं की.... १५
- ❑ अलगाववाद की जड़ २०
- ❑ आर्यसमाज और सर सैय्यद २३
- ❑ वेद एवं वैदिक २५

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण **३००० रुपये सैकड़ा**

स्पेशल (सजिल्द) **५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।**

हे मानव ! नारी के सम्मान में जरा आंखे खोलो

(विवेक प्रिय आर्य, मंत्री-आर्यवीर दल मथुरा, मो. ०९८९१६९०५५७)

वर्तमान समय में ऐसे भयंकर-भयंकर पाप हो रहे हैं कि सुनकर रौंगटे खड़े हो जाएं, आँखें डब-डबा जायें, हृदय द्रवित हो जाये। अरे राम! कितना घोर अन्याय, घोर पाप आज समाज में अधिकांश लोग कर रहे हैं। लेकिन समाज के लोगों का ध्यान उधर नहीं जाता है कि हमारे वेद, शास्त्र, गीता, रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों में इस मानव शरीर को प्राप्त करना सबसे दुर्लभ बताया गया है।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के अंदर मानव शरीर की प्रशंसा करते हुए लिखा कि-

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः

और महाभारतकार महर्षि व्यास जी ने मनुष्य शरीर रचना को श्रेष्ठ बताते हुए लिखा है-

नहि मानुषात् श्रेष्ठतम् कश्चित्

अर्थात् मनुष्य से श्रेष्ठ कोई योनि नहीं है।

वेद में मानव शरीर को परमात्मा से मिलने का साधन माना है-

इयं ते यज्ञाः तनूसे (यजु.)

इसी बात को तुलसीदास जी यों कहते हैं-

साधन धाम मोक्षकर द्वारा।
पाहि न जेहि परलोक सिधारा।।

शरीर धर्म है, सद्गुण है, सदाचार है। ऐसे मनुष्य शरीर के आरंभ को ही खत्म कर देना, काट देना, कितना घोर अपराध है, कितना अन्याय है, कितना पाप है। मेरे मन में बड़ा दुःख हो रहा है, जलन हो रही है पर क्या करूं? जिस मनुष्य शरीर से परमात्मा की प्राप्ति हो जाये, उस मनुष्य शरीर को पैदा ही नहीं होने देना, नष्ट कर देना पाप की आखिरी हद है। किसी जीव को मनुष्य शरीर प्राप्त न हो जाये, किसी का कल्याण न हो जाये, उद्धार न हो जाये, इसलिए भ्रूण हत्या करके नष्ट कर देना है। हमें पाप पाप भले ही लगे, हम नरक में भले ही जाये पर किसी जीव को कल्याण का मौका नहीं देना है।

जब पाण्डव वन में रहते थे उस समय द्रौपदी ने युधिष्ठिर से प्रश्न किया कि महाराज आप धर्म को छोड़कर एक पांव भी आगे नहीं रखते, किसी का भी अनिष्ट नहीं करते, पर जंगल में भटकते हो, अन्न, जल आदि पास में नहीं है। फल, फूल आदि खाकर जीवन निर्वाह करते हो, परंतु जो अन्याय ही अन्याय करता है, वह दुर्योधन खूब मौज कर रहा है, राज्य कर रहा है तो धर्म कर्म कुछ है कि नहीं? ईश्वर कोई न्याय करता है कि नहीं? युधिष्ठर ने कहा कि देवी तेरे भीतर यह बात कैसे पैदा हो गई, जो अपनी सुख-सुविधा के लिए धर्म का पालन करता है, वह धर्म के तत्व का नहीं जानता। धर्म का तत्व तो वह जानता है, जो कष्ट पाने पर भी धर्म का त्याग नहीं करता। धर्म का महत्व है, सुख सुविधा का नहीं। मैं सुख-सुविधा पाने के लिए धर्म का पालन नहीं करता।

विचार करें जब धर्म का पालन अपनी सुख सुविधा के लिए नहीं किया जाता तो फिर उस सुख सुविधा के लिए भ्रूण हत्या जैसे भयंकर पाप कर रहे हैं, उनकी दशा क्या होगी? भ्रूण हत्या में भी विशेषकर गर्भ में स्थित कन्या को मार देते हैं, काट देते हैं, इससे भयंकर और पाप क्या होगा। संसार के लोकाचार में कन्या से अधिक लड़के को अधिक महत्व दिया जाता है लेकिन हमारे धर्मग्रन्थों में मातृशक्ति का दर्जा पिता से हजार गुना अधिक बताया है।

साधारण बोलचाल में भी पहले माँ का नाम लिया

(शेष पृष्ठ १८ पर)

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। **अग्निः = ईश्वरः भौतिकोऽग्निः देवता।** स्वराड् जगती छन्दः।। निषादः स्वरः।।

यज्ञशालादिगृहाणि कीदृशानि रचनीयानीत्युपदिश्यते।।

यज्ञशाला आदि घर कैसे बनाने चाहिए, इस विषय का उपदेश किया जाता है।

ओ३म्

भूताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषं दृꣳहन्तां दुर्य्याः पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि। पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्याऽउपस्थेऽग्ने हव्यꣳरक्ष ।।

यजु० १-११।।

पदार्थः **(भूताय)** उत्पन्नानां प्राणिनां सुखाय **(त्वा)** तं कृषिशिल्पादिसाधनम् **(न)** निषेधार्थे **(अरातये)** रातिर्दानं न विद्यते यस्मिन् तस्मै शत्रवे बहुदानकरणार्थं दारिद्रयविनाशाय वा **(स्वः)** सुखमुदकं वा। **स्वरिति सुखनामसु पठितम्।। निघं० ३।६।। उदकनामसु च।। १ । १२ ।। (अभिविख्येषम)** अभितः= सर्वतो विविधं पश्येयम्। **अत्राभिव्योरुपपदे चक्षिङ् इत्यस्याशीर्लिङ्यार्धधातुकसंज्ञामाश्रित्य ख्याञ् आदेशः। लिङ्याशिष्यङित्यङ् सार्वधाुकसंज्ञाश्रित्य च या इत्यस्य इय् आदेश। सकारलोपाभाव इति। (दृꣳशः हन्ताम्)** दृंहन्तां वर्धयन्ताम्। **अत्रान्तर्गतो ण्यर्थः (दुर्य्याः)** गृहाणि। **दुर्य्या इति गृहनामसु पठितम्।। निघं ३ । ४। (पृथिव्याम्)** विस्तृतायां भूमौ **(उरु)** बहु **(अन्तरिक्षम्)** अवकाशं सुखेन निवासार्थम् **(अनु)** क्रियार्थे **(एमि)** प्राप्नोमि **(पृथिव्याः)** शद्धाया विस्तृताया भूमेः **(त्वा)** तं पूर्वोक्तं यज्ञम् **(नाभौ)** मध्ये **(सादयामि)** स्थापयामि **(अदित्याः)** विज्ञानदीप्तेर्वेदवाचः सकाशादन्तरिक्षे मेघमंडलस्य मध्ये, **अदितिद्यौरदितिरन्तरिक्षमिति मंत्रप्रामाण्यात्।। ऋ. १ । ८ । ६ ।१० ।। अदितिरिति वाङ्नामसु पठितम्।। निघं० १ । ११ । पदनामसु च।। निघं० ४ । १ ।। (उपस्थे)** समीपे **(अग्ने)** परमेश्वर! **(हव्यम्)** दातुं ग्रहीतुं योग्यं क्रियाकौशलं सुखं वा **(रक्ष)** पालय।। अयं मंत्रः श० १ । १ । २ । २०-२३ व्याख्यातः ।। ११ ।।

प्रमाणार्थ **(स्वः)** 'स्वः' शब्द निघं० (३ । ६) में सुख नामों में पढ़ा है और निघं० (१।१२) में उदक (जल) नामों में भी पढ़ा है। (अभिविख्येषम्) यहाँ अभि-वि के उपपद रहते 'चक्षिङ्' धातु को आशीर्लिङ् में आर्धधातुक संज्ञा होने से 'ख्याञ्' आदेश है और 'लिङ्याशिष्यङ्' से अङ, पुनः सार्वधातुक संज्ञा के आश्रय से 'या' को 'इय' हुआ एवं सकार का लोप नहीं है। (दृंहन्ताम्) यहाँ अन्तर्भावित ण्यर्थ है (दुर्य्याः) 'दुर्य्याः' शब्द निघं० (३ । ४) में गृहनामों में पढ़ा है। (अदित्याः) 'अदिति' शब्द ऋ० (१।८।६।१०) में द्यौ और अन्तरिक्ष अर्थ में आया है। निघं० (१।११) में 'अदिति' शब्द वाणी के नामों में पढ़ा है। निघं० (४।१) में 'अदिति' शब्द पदनामों में पढ़ा है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । १ । २ । २०-२३) में की गई है। १ । ११ ।।

सपदार्थान्वयः **अहं यं भूताय** उत्पन्नानां प्राणिनां सुखाय **अरातये=अदानाय** रातिः= दानं न विद्यते यस्मिन्

तस्मै शत्रवे, बहुदानकरणार्थं, दारिद्रियविनाशाय वा **अदित्याः** विज्ञानदीप्तेर्वेदवाचः सकाशादन्तरिक्षे मेघमण्डलस्य मध्ये **उपस्थे** समीपे **यज्ञं सादयामि** स्थापयामि (**त्वा**)= **तं** (तं) कृषिशिल्पादिसाधिनं (न) **कदाचिन्न त्यजामि।**

हे विद्वांसो! भवन्तः पृथिव्यां विस्तृतायां भूमौ **दुर्य्याः** गृहाणि **दृंहन्तां=वर्धयन्ताम्। अहं पृथिव्याः** शुद्धाया विस्तृताया भूमेः **नाभौ=मध्ये, येषु गृहेषु स्वः** सुखमुदकं वा **अभिविख्येषम्** अभितः सर्वतो विविधं पश्येयम्, **यस्यां पृथिव्यां** विस्तृतायां भूमौ **उरु** बहु **अन्तरिक्षम्** अवकाशं सुखेन निवासार्थं **च, अन्वेमि** प्राप्नोमि।

हे अग्ने=**जगदीश्वर!** परमेश्वर! **त्वमस्माकं हव्यं** दातुं ग्रहीतुं योग्यं क्रियाकौशलं सुखं वा **सर्वदा रक्ष** पालय। **इत्येकोऽन्वयः।।**

भाषार्थ मैं जिस यज्ञ को **(भूताय)** उत्पन्न प्राणियों के सुख के लिये **(अरातये)** शत्रु के लिये, बहुत दान करने के लिए अथवा दरिद्रता के विनाश के लिये **(अदित्याः)** विज्ञान के दीपक वेद की वाणी से आकाश में मेघमण्डल के **(उपस्थे)** मध्य में **(सादयामि)** स्थापित करूँ **(त्वा)** उस कृषि और शिल्प आदि के साधक यज्ञ को **(न)** कभी न छोड़ूँ।

हे विद्वानो! आप **(पृथिव्याम्)** इस विस्तृत भूमि पर **(दुर्याः)** घरों को **(दृंहन्ताम्)** बढ़ावें। मैं **(पृथिव्याः)** शुद्ध विस्तृत भूमि के **(नाभौ)** मध्य में जिन घरों में **(स्वः)** सुख एवं जल आदि सुख के साधन हों, उन्हें **(अभिविख्येषम्)** सब ओर देखूँ, और जिस **(पृथिव्याम्)** विस्तृत भूमि पर **(उरु)** बहुत **(अन्तरिक्षम्)** सुख से निवास के लिये अवकाश हो, उसे **(अन्वेमि)** प्राप्त करूँ।

हे **(अग्ने)** जगत् के स्वामी परमेश्वर! आप हमारे **(हव्यम्)** परस्पर लेने-देने योग्य क्रियाकौशल वा सुख की सदा **(रक्ष)** रक्षा करो।। यह मन्त्र का पहला अन्वय है।

अथ द्वितीयमन्वयमाह हे अग्ने=जगदीश्वर! अहं भूताय उत्पन्नानां प्राणिनां सुखाय **अरातये** रातिः=दानं न विद्यते यस्मिन् तस्मै शत्रवे बहुदानकरणार्थं, दारिद्रियविनाशय वा **पृथिव्याः** शुद्धाया विस्तृताया भूमेः **नाभौ** मध्ये ईश्वरत्वो **पास्यत्वाभ्यां स्वः=सुखरूपं** सुखमुदकं वा **(त्वा)=त्वामभिविख्येषम्=प्रकाशयामि** अभितः सर्वतो विविधं पश्येयम्।

भवत्कपयेमेऽस्माकं दुर्याः=गृहादयः पदार्थास्तत्रस्था मनुष्यादयः प्राणिनो दृंहन्ताम्=नित्यं वर्धन्ताम्।

अहं पृथिव्यां विस्तृतायां भूमौ **उरु** बहु **अन्तरिक्षम्=व्यापकम्** अवकाशं सुखेन निवासार्थम् **उपस्थे** समीपे **त्वा=त्वामन्वेमि=नित्यं प्राप्नोमि (न) न कदाचित् त्वा=त्वां त्यजामि। त्वमिदमस्माकं हव्यं** दातुं ग्रहीतुं योग्यं क्रियाकौशलं सुखं वा **सर्वदा रक्ष** पालय।। **इति द्वितीयः।।**

दूसरा अन्वय हे **(अग्ने)** जगदीश्वर! मैं **(भूताय)** उत्पन्न प्राणियों के सुख के लिये **(अरातये)** शत्रु के लिये, बहुत दान करने के लिए अथवा दरिद्रता के विनाश के लिए **(पृथिव्याः)** शुद्ध विस्तृत भूमि के **(नाभौ)** मध्य में ईश्वर और उपास्य होने से **(स्वः)** सुखस्वरूप एवं सुख शान्ति के निमित्त **(त्वा)** आपको **(अभिविख्येषम्)** सब ओर विविध प्रकार से देखूँ।

आपकी कृपा से ये हमारे **(दुर्याः)** गृह आदि पदार्थ और वहाँ रहने वाले मनुष्य आदि प्राणी **(दृंहन्ताम)** नित्य वृद्धि को प्राप्त हों।

मैं **(पृथिव्याम्)** विस्तृत भूमि पर **(उरु)** बहुत **(अन्तरिक्षम्)** व्यापक एवं सुख से निवास के लिए अवकाश **(उपस्थे)** में **(त्वा)** आपको **(अन्वेमि)** प्राप्त करूँ और **(त्वा)** आपको **(न)** कभी न छोडूं। आप हमारे इस **(हव्यम्)** परस्पर देने-लेने योग्य क्रिया कौशल वा सुख की सदा **(रक्ष)** रक्षा कीजिये। यह मन्त्र का दूसरा अन्वय है।

भावार्थ अत्र श्लेषालङ्कारः। ईश्वरेण मनुष्यं आज्ञाप्यते हे मनुष्य! अह त्वां सर्वेषां भूतानां सुखदानाय पृथिव्यां रक्षयामि।

भावार्थ इस मन्त्र में श्लेष अलंकार है। ईश्वर मनुष्य को आज्ञा देता है- हे मनुष्य! मैं तुझे सब प्राणियों को सुख देने के लिए पृथिवी पर स्थापित करता हूँ।

भारतीय राजनीति और जिन्ना
(धर्मपाल आर्य)

जब मुझसे कोई वेद से, शास्त्र से, उपनिषद् से, रामायण से, महाभारत से सम्बन्धित प्रश्न करता है, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता का अनुभव होता है लेकिन प्रसन्नता का यह कारण नहीं है कि मुझे इनका सम्पूर्ण ज्ञान है, अपितु कारण यह है कि यदि मुझे उपरोक्त विषयों में से किसी प्रश्न का उत्तर नहीं आता है, तो मैं उससे सम्बन्धित विषयों के ग्रन्थों का, वेदों के मन्त्र का, उपनिषदों के आख्यानों का, रामायण महाभारत के श्लोकों का, शास्त्रों के सूत्रों का अध्ययन कर प्रश्न का समाधान खोजूँगा और अपने आप को स्वाध्याय की ओर मोड़ूँगा। लेकिन मुझे एक दिन दुःखद आश्चर्य हुआ जब मेरे एक मित्र ने ऐसा प्रश्न किया जिसका उत्तर ढूंढने के लिए मुझे उस व्यक्ति के विषय में पढ़ना पड़ा, जिसके विषय में पढ़ने की, जानने की मेरी कभी रुचि नहीं रही परन्तु मैंने उस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिये अनिच्छित होते हुए भी पत्रिकाओं के, अखबारों के लेख, आलेख, सम्पादकीय आदि पढ़े, उनका चिन्तन किया और फिर निर्णय किया कि भारतीय राजनीति कितनी विडम्बनाओं की शिकार है? मुझसे प्रश्न किया कि अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में छात्रों के चल रहे आन्दोलन को लेकर आपकी क्या राय है? मुहम्मद अली जिन्ना के विषय में आपके क्या विचार हैं? मेरे लिए दोनों ही प्रश्न अटपटे थे। इसके बावजूद यह भी सत्य है कि अटपटे होने पर भी सामयिक प्रश्न थे। जिन्ना के विषय में मैंने जितना सुना, उसके अनुसार वह महापुरुष तो नहीं था। मेरे लिए फिर जिन्ना की कोई अहमियत नहीं है।

जिन्ना भारत के विभाजन का तथा द्विराष्ट्रवाद के सिद्धान्त का सूत्रधार था। इसके बावजूद भारत में जिन्ना के इतने पैरोकार होंगे, ये पढ़कर और सुनकर अत्यधिक आश्चर्य हो रहा है। अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के छात्रों द्वारा चलाये जा रहे आन्दोलनों, धरनों और प्रदर्शनों के विषय में अपने परिचितों और अखबारों में समाचार सुनने व पढ़ने को मिलते रहते थे लेकिन जब मुझे यह पता चला कि छात्रों के आन्दोलन, धरने और प्रदर्शन का कारण द्विराष्ट्रवाद सिद्धान्त के प्रतिपादक, भारत विभाजन के सूत्रधार और भारत विभाजन के बाद लगभग १० लाख हिन्दुओं के कत्ले-आम के जिम्मेदार उस मुहम्मद अली जिन्ना की तसवीर है, जो अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी छात्र संघ के कार्यालय में टंगी हुई है, वहाँ (अलीगढ़) के क्षेत्रीय सांसद सतीश गौतम तथा दिल्ली के सांसद महेश गिरि ने इस विवादग्रस्त व्यक्तित्व के चित्र को विश्वविद्यालय के छात्र संघ के कार्यालय से अविलम्ब हटाने की मांग की।

उपरोक्त मांग के उत्तर में विश्वविद्यालय के प्रवक्ता शाफे किदवई ने कहा कि जिन्ना विश्वविद्यालय के संस्थापक सदस्य थे और उन्हें छात्र संघ की आजीवन सदस्यता प्रदान की गई थी। विश्वविद्यालय के प्रवक्ता का जवाब न केवल बचकाना, अपितु गैर जिम्मेदाराना भी था। हद पार तो तब हुई, जब गोरखपुर से नवनिर्वाचित समाजवादी पार्टी के सांसद प्रवीण निषाद जिन्ना की पैरोकारी में बढ़-चढ़ कर आगे आए और अपना अधिकृत बयान जारी करते हुए कहा कि आजादी पाने में जितना योगदान महात्मा गान्धी और जवाहर लाल नेहरू का था, जिन्ना का भी उतना ही योगदान था। सांसद महोदय के उक्त बयान से कुटिल राजनीति की बू (दुर्गन्ध) आ रही है। यदि उक्त सांसद ने १६ अगस्त, १९४६ को

हिन्दुओं का वह कत्ले आम, जिसे जिन्ना के इशारे पर पूरे बंगाल में तत्कालीन सोहरावर्दी सरकार की देखरेख में चलाया गया था, जिसे इतिहास में "डाइरेक्ट एक्शन डे" के रूप में जाना जाता है, को याद किया होता, तो शायद वह जिन्ना की चापलूसी भरी तरफदारी नहीं करता। वैसे एक वर्ग विशेष को वोट बैंक के कारण खुश करना और एक वर्ग के साथ पक्षपात करना, अन्याय करना और फिर उसी वर्ग विशेष को 'तथाकथित साम्प्रदायिक सद्भाव और धर्मनिरपेक्षता' का पाठ पढ़ाना इस देश के राजनेताओं और इस देश की राजनीति का शौक सा बन गया है। इसीलिए मैं कहा करता हूँ कि इस देश की राजनीति सच्चे अर्थों में राजनीति नहीं, विरोधाभासों का, अवसरवादों का, विडम्बनाओं और विषमताओं का पिटारा है।

मैंने इस देश की राजनीति और राजनेताओं को जम्मू कश्मीर में पत्थरबाजों को लेकर पैंतरे बदलते देखा है। मैंने इस देश की राजनीति और राजनेताओं को जे. एन.यू. में देशद्रोह के नारे लगाने वाले तथा आतंकियों की बरसी मनाने वाले गद्दारों को लेकर बंटते देखा है। मैंने त्रिपल (ट्रिपल) तलाक को लेकर इस देश की राजनीतिक एकता को तार-तार होते देखा है। शाहबानो के मुद्दे पर एक वर्ग विशेष के घुटनों में इस देश की राजनीति और राजनेताओं को मैंने नतमस्तक होते देखा है। वन्दे मातरम् और भारत माता की जय के मुद्दे पर इस देश के राजनेताओं और राजनीति को मैंने बेनकाब होते देखा है। आतंकी बुरहावानी, आतंकी याकूब मेमन, आतंकी अफजल गुरु के गम में इस राजनीति और राजनीतिज्ञों को मैंने बड़ी निर्लज्जता के साथ आंसू बहाते देखा है और भारत माता की जय के नारे लगाते और वन्दे मातरम् गाते धर्मान्धों और मतान्धों के हाथों मारे गये चन्दन गुप्ता के लिए इस राजनीति और राजनेताओं को बगलें झाँकते देखा है।

'धर्मनिरपेक्ष' शब्द की सुविधाजनक और मनोवाञ्छित परिभाषा अथवा व्याख्या करने में हमारे राजनीतिज्ञों को अच्छी खासी महारत हासिल है। शायद किसी ने कभी सोचा भी नहीं होगा कि जिन्ना का जिन्न नशा बनकर इस देश के नेताओं और राजनीति पर इस कदर छायेगा कि राष्ट्रभक्ति, राष्ट्र के प्रति कृतज्ञता का भाव उसके आगे बौना हो जायेगा। यदि यह तथ्य इतिहास सम्मत है कि अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी की बुनियाद राजा महेन्द्र प्रताप सिंह द्वारा दान दी गई जमीन पर टिकी हुई है और उस दानी के प्रति कृतज्ञता का भाव तो दूर, उसका वहाँ पर कोई नाम लेने वाला भी नहीं है। इससे वहाँ के प्रशासन की, जिन्ना की तस्वीर को न हटाने वालो छात्रों की, जिन्ना की वकालत करने वाले अवसरवादी राजनेताओं की कृतघ्नता का सहज ही अन्दाजा लगाया जा सकता है। ऐसे राजनेताओं की राजनीति के लिए जिन्ना एक घटक बन गया है।

यहाँ पर मैं मुहम्मद अली जिन्ना के उस बयान को उद्धृत करना चाहूँगा, जो उसने १९४१ में दिया था। उसका कहना था - "वे उस भारत सरकार में शामिल नहीं होंगे, जो हिन्दुओं के साथ बनेगी। अगर जरूरत पड़ी, तो मुसलमान पाकिस्तान के लिए अपनी जान की बाजी भी लगा देंगे। जिन्ना ने भारत-पाकिस्तान के विभाजन को प्राकृतिक (स्वाभाविक) मानते हुए इसके पक्ष में तर्क देते हुए एक बार यह कहा था - "हम मानते हैं कि हिन्दू और मुसलमान दो बड़े राष्ट्र हैं। हम चाहे कोई भी परिभाषा या परीक्षा लागू करें; हम दस करोड़ मुसलमान एक राष्ट्र हैं। हमारी सभ्यता और संस्कृति अलग है। हमारी भाषा, हमारी कला, हमारे नाम, अनाम, हमारे मूल्य, हमारी धारणाएं, हमारे कानूनी नियम कोड, हमारे कस्टम और कैलेण्डर, हमारा इतिहास, हमारी परम्परा आदि इच्छाएं तथा जीवन का दृष्टिकोण अलग है। यह महोदय आगे कहता है कि हिन्दू और

मुसलमानों के मतभेदों को समाप्त करने का एकमात्र यथार्थवादी और व्यावहारिक तरीका देश का विभाजन ही है। इन उपरोक्त कथनों के आधार पर भी, यदि जिन्ना इस देश की राजनीति का सहारा और राजनीतिज्ञों का आदर्श बनता है, तो इसे मैं इस देश की राजनीति की और राजनेताओं की बदनसीबी कहूँगा और देश की एकता व अखण्डता के लिए सबसे बड़ा खतरा कहूँगा। वेद में संगठन सूक्त का मन्त्र है, जिसमें कहा गया है-

"सं गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि, जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते।।

अर्थात् "हे मनुष्यो! तुम सभी सत्य की, न्याय की, धर्म की, राष्ट्रहित की बातों को एक होकर बिना किसी मतभेद के अपनाते हुए चलो, मिलकर चलो। जिनकी नजर में राम का नाम लेना, कृष्ण का नाम लेना साम्प्रदायिकता है और जिन्ना का नाम धर्मनिरपेक्षता माना जाता है। भारत विभाजन का सूत्रधार जिन्ना स्मरणीय है लेकिन विश्वविद्यालय के लिए भूमि दान देने वाले राजा महेन्द्र प्रताप सिंह कहीं गुमनामी में खो रहे हैं।

मुझसे किसी ने कहा कि आप तो १९३० के बाद वाले जिन्ना को देख रहे हैं। यदि १९३० के पूर्व के जिन्ना को पढ़ेंगे, तो जिन्ना के विषय में आपका दृष्टिकोण बदल जायेगा। मुझे उनकी उक्त दलील सुनकर गुस्सा तो क्या होना था बस मैंने इतना ही कहा -"भैया मैं १९३० से पहले के जिन्ना को क्यों पढ़ूँ और समझूँ? १९३० से पूर्व को जिन्ना को पढ़ने से सन् ४७ में पाकिस्तान से एक वर्ग विशेष द्वारा एक वर्ग विशेष पर किए गये अन्तहीन अत्याचारों की पीड़ा खत्म हो जाएगी? क्या १९३० से पूर्व के जिन्ना को पढ़ने से राष्ट्र विभाजन का अभिशाप वरदान में बदल जाएगा? क्या १९३० से पूर्व के जिन्ना को पढ़ने से १९४७ के जिन्ना की राष्ट्र से की गई गद्दारी, कृतघ्नता, कृतज्ञता में बदल जाएगी? यदि नहीं, तो फिर क्यों मैं जिन्ना को पढ़ूँ?

मेरे लिए महर्षि दयानन्द से बढ़कर कोई राष्ट्रचिंतक नहीं है, जिन्होंने सभी वादों (जातिवाद, प्रान्तवाद, भाषावाद, परिवारवाद) पर विजय पाकर केवल और केवल समृद्ध राष्ट्रवाद और समृद्ध समाजवाद का सपना देखा और उसको साकार करने के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। मेरे सामाजिक और सार्वजनिक जीवन के आदर्श तो महान् व्यक्तित्व के धनी ऋषि, महर्षि योगी, यति और राष्ट्रभक्त क्रान्तिकारी हैं, जिनके व्यक्तित्व के सामने जिन्ना का व्यक्तित्व कहीं दूर-दूर तक नहीं ठहरता। देश में जो उस (जिन्ना) के पक्ष-विपक्ष में जो स्वर उठ रहे हैं, उसका एक ही कारण मैं समझ पाया हूँ और वो यह है कि इस राजनीति को हमारे राजनीतिज्ञ अपने ढंग से चला रहे हैं जिसके कारण राजनीतिक क्षेत्र एक प्रकार से नकारात्मक विचारों की प्रयोगशाला बनकर रह गया है। जिन्ना भी उसी प्रयोगशाला में किया जाने वाला एक प्रयोग है। लेकिन इस प्रकार के राजनीतिक प्रयोग राष्ट्र की एकता और अखण्डता के लिए खतरा साबित होते हैं। पाकिस्तान में भी कई ऐसे चिन्तक हैं, जो जिन्ना के दर्शन से सहमत नहीं हैं। पाकिस्तान जमात इस्लामी के संस्थापक मौलाना मौदूदी का मानना है - "जिन्ना ने भारत के मुसलमानों का जितना नुकसान किया, उतना किसी ने नहीं किया। जो पाकिस्तान में रहे, वे अमेरिकी ईसाइयों की कठपुतली बन गए और जो हिन्दुस्तान में रह गए, उनकी हैसियत काफिरों के राज में भेड़-बकरी की सी बन गई''। लेकिन हमारे देश के नेताओं (जसवन्त सिंह व लालकृष्ण आडवाणी) को जिन्ना में धर्मनिरपेक्षता और कायदे आजम के गुण दिखाई देते हैं, आखिर ऐसा क्यों है?

❑❑

'सबका आदिमूल-परमेश्वर' लेख की दृष्टि में आर्य समाज का प्रथम नियम

(आचार्य वेदप्रकाश 'श्रोत्रिय', दिल्ली, मो ०९८९९८५३६७९२)

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखित आर्य समाज का प्रथम नियम जिस पर आर्य समाज के विद्वानों ने अपन बुद्धि से बहुत प्रकार की व्याख्याएं की है। अब तक प्राप्त व्याख्याएं ऋषि एवं ऋषि परम्पराओं के अनुसार सर्वथा अज्ञानमूलक ही रही हैं। कारण यह रहा है कि ऋषियों द्वारा लिखित शास्त्रों को अधिगत एवं संगत करने का तरीका उनको आता ही नहीं है या फिर उनका बुद्धि सामर्थ्य ही नहीं है। हाँ! एक कार्य अवश्य हुआ है कि विद्या का दम्भ सब विद्वन्महानुभावों ने किया जो कि उनकी भाषा से स्पष्ट दिखाई देता है। लेकिन दम्भों में सबसे कमजोर दम्भ विद्या का दम्भ है इसलिए **'विद्यादम्भः क्षणस्थायी'** कहा है। इसी विद्यादम्भ का आश्रय लेकर किसी ने महर्षि जी को भाषा अनभिज्ञ, किसी ने अपने से भी साधारण ज्ञान वाला मानकर सर्व प्रकार से उनके द्वारा लिखित साहित्य में अनेक विध दूषण सिद्ध कर अपने को भूषण माना। चलो! अगर यही परम्परा न रही होती, तो इतनी दुर्गति हमारी क्यों होती? मुश्किल तो यह है कि किसी विद्यापारग विद्वान् से जानने का भाव भी यह विद्या का दम्भ नहीं करने देता। यह 'मैं' देखने में बहुत छोटा सा लगता है परन्तु यह इतना शक्तिशाली है कि जो इसकी ओर जरा सी दृष्टि से निहारने की कोशिश कर लेता है, उसे यह जड़ से ही मिटाने को उद्यत हो जाता है।

इसी प्रकार एक प्रयास और नया हुआ है जो कि उन सभी पूर्ववर्त्ती विद्वानों की भूलों को सुधारने की दृष्टि से किया गया है। लेकिन इस प्रयास में भी विद्या का दम्भ स्पष्ट अपना स्वरूप प्रदर्शित कर रहा है। परिणाम यह हुआ जो भयङ्कर भूलें उन विद्वानों से हुईं- उन से भी भयंकर भूल ऋषि के इस प्रथम नियम की व्याख्या में हुई है। यह हमारे मित्र आचार्य श्री अग्निव्रत नैष्ठिक, वैदिक वैज्ञानिक द्वारा किया गया प्रयास है। इस विषयक कुछ और अधिक लिखने के स्थान पर आचार्य जी द्वारा की गई व्याख्या के अंशों से कुछ जानने का प्रयास अवश्य करेंगे। इससे आगे यदि श्री आचार्य जी महाराज की आज्ञा होगी तो कुछ लिखा अथवा विमर्श भी किया जा सकेगा। यदि आज्ञा नहीं हुई तो कोई आवश्यकता नहीं + अस्तु! जैसा होगा यथावसर किया जावेगा।

नियम इस प्रकार है :-

सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

आचार्य जी की मान्यतानुसार उनका कथ्य निम्न प्रकार अधिगन्तव्य है।

१. सत्य विद्या एक समस्त पद है।

२. किसी को अधिकार नहीं है कि महर्षि के वाक्य को बदले।

इन मान्यताओं को आधार मानकर श्री आचार्य जी इस नियम की व्याख्या इस प्रकार करते हैं-

१. 'सत्य' पद 'विद्या' के साथ विशेषण के रूप में जुड़ा हुआ है।

२. और 'पदार्थ' विद्या से पृथक् है।

३. इस द्वितीय 'विद्या' पद के साथ सत्य विशेषण नहीं है।

परन्तु यहाँ लुप्त रूप से इसके साथ जुड़ा अवश्य है, अर्थात् यह 'विद्या' पद पूर्व में आए सत्य विद्या के लिए प्रयुक्त है।

४. ऊपर कहे गए मान्यता आधारों पर दृढ़ होकर आचार्य श्री नैष्ठिक जी इस सम्पूर्ण वाक्य का अर्थ निम्न प्रकार करते हैं-

'यहाँ सम्पूर्ण वाक्य का अर्थ है कि 'सम्पूर्ण सत्यविद्या

और जो पदार्थ उस सत्य विद्या से जाने जाते हैं? का आदि मूल परमेश्वर है।'

५. यहाँ 'सत्यविद्या' पद वेद की ओर संकेत कर रहा है। जैसा कि आर्य समाज के तृतीय नियम में वर्णित है।

६. इसके साथ ही 'पदार्थ' पद इस सम्पूर्ण सृष्टि के पदार्थों अर्थात् ईश्वर, जीव व प्रकृति के विकार रूप में उत्पन्न सभी जड़ पदार्थों की ओर संकेत कर रहा है।

७. ये सभी पदार्थ जिस वेद विद्या से जाने जाते हैं, वही सत्य विद्या है।

निष्कर्षात्मक कथन पर दृष्टिपात कीजिए-

८. इस प्रकार इस सृष्टि के सभी जड़ व चेतन पदार्थ तथा उनको जानने का साधन सत्यविद्या दोनों की उत्पत्ति का मूल निमित्त कारण परमात्मा ह।

९. यह शङ्का करें कि 'पदार्थ' पद के पश्चात् आये 'विद्या' के साथ सत्य क्यों नहीं। तो उसके उत्तर में मैं कहना चाहूँगा कि यह कोई दोष नहीं है। ऋषि अपनी बात सूत्र रूप में कहते हैं।

१०. सभी आर्ष ग्रन्थ इसी शैली के प्रतिपादक हैं- उदाहरण देते हैं- 'कि यह काला घोड़ा और जो व्यक्ति घोड़े पर बैठा है; का निवास यह गाँव है।'

आगे आचार्य जी सत्य को स्पष्ट करने के लिए लिखते हैं-

११. महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में 'सत्' का अर्थ नित्य किया है। इस कारण यहाँ 'सत्य' पद को नित्य का पर्य्यायवाची मानना चाहिए।

फिर इस मनमानी मान्यता के आधार पर निष्कर्ष देखिए-

१२. इसका तात्पर्य यह हुआ कि सभी प्रकार का नित्य ज्ञान और उस नित्य ज्ञान से जो पदार्थ जाने जाते हैं अथवा जाने जा सकते हैं, उन दोनों ही का आदिमूल परमात्मा है।

१३. यह नित्य ज्ञान वेद है और वेद से जानी जाने वाली सम्पूर्ण सृष्टि, इन दोनों का कर्त्ता परमात्मा है। यहाँ अनित्य विद्या का कर्त्ता परमात्मा नहीं है। इसका यह अर्थ है कि वेद में अनित्य इतिहास आदि विद्याएं नहीं हैं, भले ही वे विद्याएं यथार्थ हों।

मित्रो! यह हमने यथार्थ रूप से 'दयानन्द सन्देश' मई २०१८ में प्रकाशित आचार्य जी के 'सबका आदि मूल-परमेश्वर' लेख में लिखित भाषा में निहित मान्यताएं आप सबके समक्ष रखी हैं।

अब हम केवल इन मान्यताओं पर मात्र विचार करते हैं-

१. सत्यविद्या एक समस्त पद है।

विचार- सत्यविद्या एक समस्त पद है, तो इसमें समास क्या है? और उसका अर्थ क्या होगा? क्योंकि आगे की सङ्गति में इसका सहचार भाव होगा।

२. किसी को अधिकार नहीं कि महर्षि के वाक्य को बदले।

विचार- पूर्ण रूप से सहमति है कि नितान्त रूप से किसी को यह अधिकार नहीं है कि ऋषि के वाक्य को बदले। **पर आचार्य श्री आपने स्वयं अपनी इस प्रतिज्ञा का भंग किया है।**

अब हम व्याख्या भाग पर विचार करते हैं-

१. 'सत्य' पद 'विद्या' के साथ जुड़ा हुआ है विशेषण के रूप में।

विचार- इधर तो आप 'सत्यविद्या' को एक समस्त पद मानते हैं और यहां पर सत्य विशेषण है विद्या पद का, यह आप मानते हैं। चलिए- सत्य विद्या में विशेष्य और विशेषण के सम्बन्ध का नाम विशिष्ट कहलाता है, वह क्या है। फिर आपने 'सब' शब्द को क्यों हटा दिया? यहां पर आपको अधिकार है कि 'सब' सर्वनाम को साथ लिये बिना आप अपना मनमानी अर्थ कर सकते हैं? यदि 'सब' लगा दिया जाये तो फिर आपके इस वाक्य योजना का कुछ अर्थ रह जायेगा?

२. और 'पदार्थ' विद्या से पृथक् है।

विचार- आचार्य जी महाराज! यहाँ पर विद्या पद अपने करण कारक के साथ है। आप 'पदार्थ' को विद्या से पृथक् करके वाक्य के अस्तित्व को मिटा देने की

कामना कर रहे हैं जो कि सर्वथा हेय है। यहाँ पर आपने 'जो' को छोड़कर उन्मुक्त उड़ान लेने की कोशिश की जो कि उड़ने का असफल प्रयास मात्र है। 'जो' को आपने पृथक् करके कैसे सोचा?

३. इस द्वितीय 'विद्या' पद के साथ विशेषण नहीं है।

विचार- आपको अधिकार है कि आप 'सत्य' को विशेषण मानकर उचित स्थान पर संयोजित कर दें! जैसा कि आपने- सत्य को लुप्त मानकर जोड़ भी दिया है। कृपया यह सोचिए- एक तरफ- आप 'सत्यविद्या' पद को एक ही पद मानते जो समस्त यानी समासयुक्त है, उसमें से आप अपनी चाह पूरी करने के लिए एक पद उठा लावेंगे- 'तो आपके अनुसार अब वहाँ पर मात्र 'विद्या' पद बचा और यहाँ पर जो पदार्थ सत्य विद्या से यह वाक्य हो गया।

दूसरी बात 'लुप्त' कहाँ होता है? और यहाँ पर उसका लोप कैसे हुआ? यह आश्चर्यमयी घटना आपके ही वश की बात है।

क्या यहाँ 'पदार्थविद्या' एक समस्त पद है जिसमें आप यह असाध्वी कल्पना कर सकें कि सत्य का लोप हो गया है। जबकि आप पूर्व में पदार्थ को विद्या से पृथक् मान चुके हैं। चलो! आप में असंभव को संभव बनाने का सामर्थ्य है तो फिर वाक्य इस प्रकार से बनेगा कि **'जो पदार्थ सत्य विद्या से'**। फिर यहाँ पर प्रश्न है कि प्रथम विद्या शब्द व्यर्थ हो गया। क्या ऐसा तो नहीं है कि हम अपनी बुद्धि-मन्दता को आरोपित कर रहे हैं।

४. अब आप अपने निष्कर्षात्मक तथ्यहीन कथ्य पर विचार कीजिए- कि निष्कर्ष- "सम्पूर्ण सत्य विद्या और जो पदार्थ उस सत्य विद्या से जाने जाते हैं, का आदि मूल परमेश्वर है।

विचार- प्रथम तो आप के निश्चित किए मानकों के हिसाब से वाक्य इस प्रकार से होगा-

'सब विद्या और जो पदार्थ सत्य विद्या से जाने जाते हैं, का आदि मूल परमेश्वर है।'

हम विचार करें- सब विद्या क्या हैं? यह अनुत्तरित प्रश्न है। यदि सब के साथ विद्या को देखें तो सब विद्याएं या सब विद्याओं होना चाहिए! लेकिन यहाँ पर एक वचन ही है। जो पदार्थ सत्यविद्या स जाने जाते हैं- यहाँ पर सत्यविद्या आपके अनुसार एक समस्तपद है, उसको आपने एक पद केवल विद्या बना दिया। लेकिन आप तो इससे भी आगे चले गए- समस्त ऋषि भाषा का कचरा बना डाला। देखिए-

१. सब के स्थान पर सम्पूर्ण शब्द का स्थापन।

२. और जो पदार्थ उस सत्य विद्या से जाने जाते हैं। आप भूल गए कि आपने सत्य पद को लुप्त मानकर अर्थात् 'पदार्थ और विद्या से' के बीच में सत्य रखकर एक पद 'पदार्थ सत्य विद्या से' बना दिया। उससे पूर्व आप घोषण कर चुके हैं कि पदार्थ विद्या से पृथक् है। और 'उस' शब्द को आपने कैसे जोड़ा?

३. सम्पूर्ण सत्यविद्या और जो पदार्थ उस सत्यविद्या से जाने जाते हैं का आदि मूल परमेश्वर है।

१. इस वाक्य में जाने जाते हैं- के पश्चात् 'उन सबका' इसके स्थान पर केवल 'का' क्यों लिखा है। 'उन सबका' क्यों हटा दिया?

२. प्रत्येक साधारण व्यक्ति भी जानता है कि 'और' दो वाक्यों को जोड़ने के लिए प्रयोग होता है, जैसे कि-

सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। (आर्यसमाज का चतुर्थ नियम)

इस नियम में दो वाक्य है- जो इस प्रकार है।

१. सत्य के ग्रहण करने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

२. असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

दोनों को मिलाकर एव ही क्रिया से 'और' संयोजक शब्द के साथ जोड़ दिया! तब वाक्य इस प्रकार बना- कि

सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

अगर इस प्रकार हम आपके रचित वाक्य को देखें तो उसकी हालत क्या होती है?

सम्पूर्ण सत्य विद्या और जो पदार्थ उस सत्य विद्या से जाने जाते है; का आदि मूल परमेश्वर है।

दो वाक्यों को पृथक् कर इनका स्वरूप इस प्रकार होगा।

१. सम्पूर्ण सत्यविद्या उस सत्यविद्या से जाने जाते हैं, का आदि मूल परमेश्वर है।

२. जो पदार्थ उस सत्य विद्या से जाने जाते हैं, का आदि मूल परमेवर है।

अभिप्रायः- (१) सम्पूर्ण सत्यविद्या उस सत्यविद्या से जाने जाते हैं। इस वाक्य का अर्थ समझा जा सकता है। इतना वैदुष्य कहाँ से लाया जावे, जो इसका अर्थ समझ सकें।

(२) द्वितीय वाक्य में जो पदार्थ उस सत्य विद्या से जाने जाते हैं। कौन सी है, वह सत्यविद्या जिसे मैं उस **'सत्यविद्या से'** यह मान सकूँ।

(३) उन सबका- यह शब्द हटाकर उसके स्थान 'का' से काम चलाना, यह कैसी बुद्धिमानी है? फिर आदिमूल का क्या बनेगा?

५. यहाँ 'सत्यविद्या' पद् वेद की ओर संकेत कर रहा है। जैसा कि आर्य समाज के तृतीय नियम में वर्णित है।

विचार- श्रीमान् आचार्य जी! आर्य समाज के तृतीय नियम में सत्यविद्या 'वेद है' ऐसा तो कुछ भी नहीं है। वहाँ पर तो ऋषि ने लिखा है कि 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है' और इसका अर्थ है कि सब सत्य विद्याओं का अधिकरण वेद है। जैसा कि ऋषि ने स्वयं लिखा है 'सर्वविद्याधिकरणं वेद शास्त्रम् अर्थात् सब विद्याओं का खज़ाना वेद शास्त्र है। इसके अतिरिक्त दूसरा प्रमाण-

प्रश्न वेदेषु सर्वा विद्याः सन्त्याहोस्विन्नेति?

वेदों में सब विद्या हैं वा नहीं?

उत्तर- सर्वाः सन्ति मूलोद्देशतः। सब हैं। क्योंकि जितनी सत्यविद्या संसार में हैं वे सब वेदों से ही निकली हैं। (महर्षि दयानन्द)

आप कह रहे हैं' वेद ही सत्य विद्या है- इस वाक्य में और वेद सब विद्याओं का खज़ाना है तथा सब विद्या वेद में है और वेदों से ही निकली है। क्या इसमें कुछ भी अन्तर है ही नहीं? अब हम क्या कह सकते हैं- अपने निष्कर्षात्मक अर्थ पर स्वयं ही विचार कीजिए!

६. इसके साथ ही 'पदार्थ' पद उस सम्पूर्ण सृष्टि के पदार्थों अर्थात् ईश्वर, जीव व प्रकृति के विकार रूप में उत्पन्न सभी जड़ पदार्थों की ओर संकेत कर रहा है।

विचार- यह आपका खोजपूर्ण ऐसा रहस्योद्घाटन है कि जिसकी समता अर्थात् समर्थन करने का साहस आज तक कोई ऋषि भी नहीं कर पाया। आपका वाक्य- 'पदार्थ' पद इस सम्पूर्ण सृष्टि के पदार्थों अर्थात् ईश्वर, जीव व प्रकृति के विकार रूप में उत्पन्न सभी जड़ पदार्थों की ओर संकेत कर रहा है। आपके वाक्यानुसार अर्थ हुआ-

ईश्वर के विकार रूप में

जीव के विकार रूप में

व

प्रकृति के विकार रूप में, जड़ पदार्थों की ओर संकेत कर रहा है।

श्रीमान् आचार्य जी! सृष्टि में उत्पन्न कोई जड़ पदार्थ ईश्वर का विकार नहीं है और न ही जीव का विकार है। हाँ! प्रकृति का विकार तो है ही। क्योंकि प्रकृति परिणामिनी है। प्रलय में निर्विकार रूप से रहती है और सृष्टि में सविकार रूप से। ईश्वर सदा एक रस बना रहता है- न कभी उत्पत्ति में आता है और न प्रलय में जाता है। ईश्वर पूर्ण होने से, अनन्त होने से और सर्वदा एक रस होने से वर्तमान रहता है। जीव अल्पज्ञ होने से शुभाशुभ कर्म करता हुआ अविद्या में जन्मादि में आता जाता है परन्तु अपनी सत्ता से उसमें विकार उत्पन्न नहीं होता। शरीर संयोग से सोपाधिक हैं

७. ये सभी पदार्थ जिस वेद विद्या से जाने जाते हैं, वही सत्य विद्या है।

विचार- यह आपका निष्कर्ष स्वयं अस्तित्व विहीन हो जाता है जैसा कि पांचवें संख्यात्मक तथ्य पर विचार किया है।

८. इस प्रकार इस सृष्टि के सभी **जड़** व **चेतन पदार्थ** तथा उनको जानने का साधन सत्यविद्या दोनों की उत्पत्ति का मूल निमित्त कारण परमात्मा है।

विचार- अब तक आपके द्वारा किए गए अन्वेषण में यह सार कहीं भी नहीं स्पष्ट किया गया है जो इस आठवें संख्यात्मक अन्वेषण में स्पष्ट किया है कि जड़ व चेतन पदार्थ तथा उनको जानने का साधन सत्य विद्या दोनों की उत्पत्ति का मूल निमित्त कारण पारमात्मा है। वहाँ पर वाक्य कुछ और ही है- वह इस प्रकार है- 'सम्पूर्ण सत्य विद्या और जो पदार्थ उस सत्य विद्या से जाने जाते हैं, का आदि मूल परमेश्वर है।

अब आप किस प्रकार फँसे हैं- (१) अगर आप सत्यविद्या को वेद ही मानते हैं तो तब ईश्वर मूलनिमित्त है तो वेद इस प्रकार ही हुआ जैसे उत्पन्न होने से पूर्व घड़े का अभाव था जिसको 'प्रागभाव' कहते हैं। समस्या तब और उत्पन्न हो जावेगी जब 'प्रागभाव' प्रध्वंसााभाव में बदल जाता है अर्थात् जो वस्तु संयोग से पूर्व न हो- फिर संयोग से उत्पन्न होती है तो उसका प्रध्वंसाभाव निश्चित होगा।

अब आप यह सिद्ध करिए- वेद उत्पन्न होने से पूर्व नहीं रहते और उत्पन्न होने के पश्चात् नष्ट हो जावेंगे! अरे महाराज! ऋषि तो यह लिखते हैं-

"बीजांकुर न्याय से ईश्वर के ज्ञान में वेद नित्य वर्तमान रहते हैं। सृष्टि के आदि में ईश्वर से वेदों की प्रसिद्धि होती है और प्रलय में जगत् के नहीं रहने से उनकी अप्रसिद्धि होती है, इस कारण से वेद नित्यस्वरूप ही बने रहते हैं।" महर्षि दयानन्द।

दूसरी बात इस नियम में आदि मूल का अर्थ मूल निमित्त कारण नहीं है। यह आपका भ्रम मात्र ही है।

९-१०. पदार्थ पद के पश्चात् आए विद्या के साथ सत्य नहीं- उत्तर. यह कोई दोष नहीं। सूत्र शैली है। आर्षग्रन्थ इसी शैली के प्रतिपादक हैं-

उदाहरण- यह काला घोड़ा और जो व्यक्ति घोड़ने पर बैठा है, का निवास यह गाँव है।

विचार- यह कौन सा सूत्र है कि कहीं का ईंट कहीं का रोड़ा भानुमती ने कुनवा जोड़ा! यह कौन सा सूत्र है कि अपनी अज्ञानमूलक अथवा भ्रान्तियुक्त मान्यता की सिद्धि के लिए कहीं से शब्द उठाकर कहीं रख देना। उदाहरण इतना गलत है कि जिसका महर्षि के वाक्य से कोई सङ्गति लगती ही नहीं है। अनार्ष उदाहरण आर्ष की सिद्धि के लिए कैसे दिया जा सकता है। आर्ष और अनार्ष का भेद दृष्टव्य है-

यः कश्चिदनूचानो, विद्यापारगः पुरुषोऽभ्यूहति. ... तदेवार्षमृषिप्रोक्तं वेद व्याख्यानं भवतीति मन्तव्यम्।। किं च यदल्पविद्येनाल्पबुद्धिना, पक्षपातिना मनुष्येण चाभ्यूह ते- तदनार्षमनृतं भवति। नैतत्कनाप्यादर्तव्यमिति। कुतः? तस्यानर्थयुक्तत्वात्। तदादरेण मनुष्याणामप्यनर्था- पत्तेश्चेति।

आर्ष ऋषि प्रोक्त होता है और अनार्ष मनुष्य प्रोक्त होता जो कि आदर के योग्य नहीं, यह सिद्ध हुआ। सम्पूर्ण कथन में आपकी प्रथम मान्यता जो पक्षपातपूर्ण है- वह बनाई- फिर उसको सिद्ध करने के लिए जो कहा सो कहा! आप देखिए- यह काला घोड़ा = सब सत्य विद्या

और जो व्यक्ति घोड़े पर बैठा है = और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, का निवास यह गाँव है = उन सब का आदिमूल परमेश्वर है। क्या सङ्गति है? लगता है कि मेरे आचार्य जी, दृष्टान्त की परिभाषा भी भूल गए अपनी मान्यता की सिद्धि के प्रयोजन की हठ में। दृष्टान्त की परिभाषा-

लौकिकपरीक्षकाणां यस्मिन्नर्थे बुद्धि साम्यं स दृष्टान्तः।

यस्मिन् पदार्थे लौकिकानां- शास्त्रीयज्ञानरहितानां परीक्षकाणां= शास्त्रीय ज्ञानवतां च बुद्धि साम्यं = साध्य साधनयोः समानाधिकरण्य विषयक बुद्धेः साम्यं भवति स दृष्टान्तः।

अर्थात् जिस पदार्थ में लौकिक अर्थात् शास्त्रीय ज्ञान रहित तथा शास्त्रीय ज्ञान युक्त दोनों के ज्ञान की समता हो, उसे दृष्टान्त कहते हैं। सो इस उदाहरण में ऐसी कोई विशेषता है नहीं।

काले घोड़े की समता = सब सत्य विद्या से नहीं है और जो व्यक्ति घोड़े पर बैठा है, उसकी संगति और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, इससे नहीं है। तथा 'का निवास यह गाँव है- उन सबका आदि मूल परमेश्वर है, से भी नहीं है। अपनी अज्ञानमूलक मान्यता की सिद्धि में साध्य निर्देश प्रतिज्ञा के विरुद्ध उदाहरण अमान्य ही है।

११. महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश में 'सत्- का अर्थ नित्य किया है। इस कारण यहाँ 'सत्य' पद को नित्य का पर्य्यायवाची मानना चाहिए।

विचार- पूज्य आचार्य जी! आपकी बौद्धिक क्षमता का भी कमाल है। सत् और सत्य दोनों एकार्थवाची मान्य कर स्वमन्तव्य में सिद्धि का हेतु बना दिया। 'सत्' का अर्थ तो नित्य है ही! सत्यार्थप्रकाश में ईश्वर का प्रकरण है इसलिए मान ईश्वर में घटा दिया। नहीं तो सत्- ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों को ही कहते हैं। जो केवल कारण हों अर्थात् जिनका कोई कारण न हो- वे सत् हैं और नित्य हैं। सूत्र देखिए-

सदकारण वन्नित्यम् वै. दर्शन! सत् का अर्थ- अस्तीति सत्- अर्थात् जो सदा वर्तमान हो वह सत् है! लेकिन 'सत्य' का अर्थ यह नहीं है- अपितु 'सन्तीति सन्तः, तेषु सत्सु साधु सत्यम्' जो पदार्थ हों उनको सत् कहते हैं, उनमें साधु होने से सत्य होने से सत्य कहाता है।

वर्तमान में प्रकरण में आपका मन्तव्य पूर्ण होता हुआ नज़र नहीं आता। अगर आप सत्य कहते हैं- तो 'सत्' अव्याकृत प्रकृति से उत्पन्न यह संसार 'सत्य' हुआ। ईश्वर तो प्रकृति सत् में भी है- इसलिए भी सत्य है और उत्पन्न में भी विद्यमान है। लेकिन सत् को सत्य का पर्यायवाची मानकर नित्य वेद=ज्ञान सिद्ध करना आपके बूते की बात नहीं है। जैसा कि आपने अग्रिम संख्यात्मक प्रवाह में सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

१२. इसका तात्पर्य यह हुआ कि सभर प्रकार नित्य ज्ञान और उस नित्य ज्ञान से जो पदार्थ जाने जाते हैं अथवा जाने जा सकते हैं- उन दोनों का ही का आदिमूल परमात्मा है।

विचार- १. आप कहते हैं कि ऋषि का वाक्य नहीं बदलना चाहिए- आपने कई स्थानों पर बदला है यहाँ पर भी बदल डाला।

२. उन सबका- की जगह 'उन दोनों ही का' यह पाठ परिवर्तन किया।

३. आदि मूल परमेश्वर है - की जगह आदि मूल परमात्मा है।

४. सब सत्य विद्या- के स्थान पर सभी प्रकार का नित्य ज्ञान क्यों लिखा?

५. जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं- के स्थान पर उस नित्य ज्ञान से जो पदार्थ जाने जाते अथवा जाने जा सकते हैं। पाठ कर दिया। यह शोभनीय नहीं है।

क्रमशः विचार करते हैं-

२. 'उन सबका' का अर्थ 'उन दोनों ही का' है। संसार का साधारण से साधारण अल्पमति भी दुर्भाग्य से नहीं मिलेगा जो 'उन सबका' इस का अर्थ 'उन दोनों ही का' का करे या समझे। पर आप धन्य है।

३. आदिमूल परमेश्वर की जगह आदिमूल परमात्मा है।

यहाँ पर परमेश्वर के स्थान पर परमात्मा बदलकर रख दिया। कस्तूरिये हिरन की भांति आप कूदते फिर रहे हैं। क्या जो अभिप्राय परमेश्वर से निकलता है वह परमात्मा शब्द से भी निकलेगा। प्रकरणवश यहाँ परमेश्वर ही अभिप्रेत अर्थ को प्रगट कर उपयुक्त है, परमात्मा नहीं। चाहे एक ही सत्ता के दोनों नाम ही क्यों न हों? महाराज! अब देखिए- दोनों शब्दों के अर्थों का अन्तर-

प्रथम परमात्मा का अर्थ-

परश्चासावात्मा च, य आत्मभ्यो जीवेभ्यः सूक्ष्मेभ्यः परोऽतिसूक्ष्म; स परमात्मा, जो सब जीव आदि से उत्कृष्ट और जीव और प्रकृति तथा आकाश से अति सूक्ष्म और सब जीवों का अन्तर्यामी आत्मा है- वह ईश्वर परमात्मा है।

यह अर्थ ईश्वर की सूक्ष्मों में अतीव सूक्ष्मता तथा सूक्ष्म जीव की अन्तर्यामिता का द्योतक है। तथा परमेश्वर-

यः ईश्वरेषु समर्थेषु परमः श्रेष्ठः स परमेश्वरः।

सामर्थ्य वाले का नाम 'ईश्वर' है और जो ईश्वरों का अर्थात् समर्थों में समर्थ जिसके तुल्य कोई भी न हो, उसका नाम परमेश्वर है। अतः आदिमूल परमेश्वर ही हो सकता। परमात्मा शब्द आपने व्यर्थ प्रयोग किया है।

विशेष- यह गहन तथ्य इस समय स्पष्ट नहीं करूँगा कि आदिमूल परमेश्वर क्यों सङ्गत है? परमात्मा क्यों नहीं? यहाँ यही समीचीन है। भिन्न भाव से जब आप कहेंगे तब स्पष्ट करूँगा।

४. आचार्य जी! सब सत्य विद्या के स्थान पर नित्य ज्ञान भी सर्वथा असङ्गत है तथा आगे वह पाठ कि उस नित्य ज्ञान से जो पदार्थ जाने जाते हैं अथवा जाने जा सकते (भ्रमात्मक-संशयात्मक-अपरिपक्व होने से) सर्वथा भ्रन्त हैं।

१३. यह नित्य ज्ञान वेद है और वेद से जानी जाने वाली सम्पूर्ण सृष्टि, इन दोनों का कर्त्ता परमात्मा है। यहाँ अनित्य विद्या कर्त्ता परमात्मा नहीं है।

विचार- मैं बहुत आश्चर्य में पड़ जाता हूँ जब आपकी इस प्रकार आधारहीन सोच देखता हूँ। यहाँ पर आप कहते हैं कि नित्य ज्ञान वेद है, उसका कर्त्ता परमात्मा है। आचार्य जी! मैं पहले भी लिख चुका हूँ कि वेद उत्पन्न नहीं होते हैं इधर आप वेद को नित्य मान रहे हैं- और उधर आप वेद का कर्त्ता ईश्वर मान रहे हैं। या तो वेद को नित्य मत मानो या उत्पन्न होना मत स्वीकार करो। जो वस्तु नित्य होती है वह स्वभाव सिद्ध और अनादि होती है। दूसरी बात वेद कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो किसी अन्य कारण = यानी सामर्थ्य से ईश्वर उत्पन्न करता है जैसे कि मिट्टी से घड़ा कुम्हार बनाता है या प्रकृति से ईश्वर संसार बनाता है। यहाँ पर मिट्टी अथवा प्रकृति कुम्हार अथवा ईश्वर का घड़ा वा संसार उत्पन्न करने में सामर्थ्य हैं। इस प्रकार वेद नहीं है अपितु यह तो ईश्वर के ज्ञान रूप सामर्थ्य हैं। यदि ईश्वर नित्य है तो वेद ज्ञान = सामर्थ्य भी नित्य है। वेद उस ईश्वर के विद्या स्वरूप होने से नित्य है। ईश्वर की विद्या कभी अनित्य नहीं हो सकती उसके नित्य-स्वरूप होने के कारण।

फिर आप कहते हैं कि अनित्य विद्या का कर्त्ता ईश्वर नहीं है। मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि संसार अनित्य है। इसका कर्त्ता ईश्वर है कि नहीं। तो फिर आप यह क्यों कह रहे हैं कि अनित्य विद्या का कर्त्ता ईश्वर नहीं है। महाराज! इसलिए आपको जब यह अर्थ नहीं सूझा तो वेद अनित्य इतिहास आदि विद्याओं की बात कहकर अप्रसङ्गोपात्त अकथ्य को लाकर उपस्थित कर दिया। **उपस्थितं परित्यज्य अनुपस्थितं याचते**? वाली बात कह डाली। यह सर्वथा अनर्थक है जो प्रलायमात्र है और शास्त्र कहता है 'प्रलापमात्रमनर्थकं भवति। आप कहते हैं कि इसी संदर्भ में जैसा कि आपने कहा है कि ग्रहण करना चाहिए- नाना भ्रान्तियों में फँसकर अपना समय व्यर्थ नहीं करना चाहिए। भ्रान्ति तो सबसे अधिक आपको ही है। निर्भ्रान्ति होकर भ्रान्तिहीन होने का कष्ट करें।

मेरा निवेदन है कि इस विचार-विमर्श को आप अन्यथा नहीं ग्रहण करें। कृपया विद्या को विवाद का स्थान न मानकर संवाद के लिए ही स्वीकार करने की कृपा करें। एतदर्थ जब आप कहेंगे तो मैं आमने सामने बैठकर ऋषि को यथातथ्य कथन को प्रस्तुत करने के लिए समुद्यत रहूँगा। मेरा लेशमात्र भी उद्देश्य प्रतिष्ठा-हानि करना नहीं है, अपितु यथातथ्यतः प्रगट करना उद्देश्य विहित है। इस शुद्ध भावना के साथ लेख को समाप्त करता हूँ कि ऋषियों के लेखों में संशोध्य भवना न रखकर ज्यों का त्यों स्वीकार कर शास्त्रों से पुष्ट किया जावे। इसी में हमारा गौरव है। इस अभिप्राय का एक श्लोक भी देखिए-

विद्यानुरागशुभवृत्ति विशुद्धचित्ताः उत्कृष्ट हर्षमपि जग्मुरिवाम्बरे वा।

उद्यन्तमिन्दुमवलोक्य चकोरवृन्दं, विद्वान्स एव-मृषिवर्य्यमतं प्रशस्तम्।।

अर्थात् विद्यानुरागी विशुद्ध हृदय विद्वान् ऋषिवर्य्य के प्रशस्त सिद्धान्त देखकर ऐसे ही परम प्रसन्न होते हैं जैसे चकोर वृन्द अम्बर में उदय होते हुए पूर्ण चन्द्र को देखकर प्रसन्न होते हैं।

इति।

❑❑

पौराणिक कथाओं की वेद से कल्पना-२

(उत्तरा नेरूर्कर, बंगलौर, मो.- ०९८४५०५८३१०)

दयानन्द सन्देश के फरवरी २०१६ के अंक में मैंने प्रदर्शित किया था कि पुराणों को जो वेदों पर आधारित बताया जाता है, सो शिव की कल्पना का स्रोत तो दृष्टिगोचर होता है। उसके कई अंश वेद-मन्त्रों के विकृत अर्थ द्वारा रचे गए हैं। उसी श्रृंखला में अबकी बार मैं दधीचि की पौराणिक कथा के वैदिक स्रोत पर प्रकाश डाल रही हूं। बृहदारण्यकोपनिषद् पढ़ते समय मुझको इसका बोध हुआ। बृहदारण्यक में दधीचि को दध्यङ् पुकारा गया है और वेदों में भी प्रायः यही प्रयोग मिलता है, परन्तु ये दोनों नाम एक ही हैं-किंचित् प्रत्यय-भेद है, और कुछ नहीं। अनेकों वेदमन्त्रों के ऋषि 'दध्यङ् आथर्वण' हैं। अथर्वा ऋषि के पुत्र होने के कारण, दधीचि को आथर्वण भी कहा गया है, ऐसी मान्यता है।

पुराणों (विशेषकर भागवत पुराण), महाभारत, आदि, में दधीचि के विषय में दो कथाएं मुख्यरूप से प्राप्त होती हैं। पहले में, इन्द्र ने दृढ़-योगी दध्यङ् ऋषि को प्रवर्ग्य और मधुविद्या दी, परन्तु देने के उपरान्त कहा कि यदि आप इस विद्या को किसी और को कहेंगे तो मैं आपका शिरोच्छेदन कर दूंगा। कुछ समय बाद, ऋषि की ख्याति सुन, अश्विनी अथवा अश्वी कुमार उनसे मधुविद्या सीखने आए। ऋषि की कठिनाई जानकर उन्होंने कहा कि हम आपका सिर काटकर अन्यत्र सुरक्षित कर देंगे, जिससे विद्या देते समय इन्द्र आपको पहचान न पाए; बाद में हम आपका शिर पुनः स्थापित कर देंगे। उन्होंने ऐसा ही किया, परन्तु इन्द्र को तब भी ज्ञात हो गया। इन्द्र ने वज्र से अश्वशिरधारी ऋषि का सिर काट दिया। तब अश्वी कुमारों ने दधीचि का अपना सिर पुनः संयोजित कर के उनको पुनरुज्जीवित कर दिया। यह कथा शतपथ ब्राह्मण (१४/१/१) में भी पाई जाती है।

दूसरी कथा में, दधीचि एक तपस्वी ब्राह्मण भी थे, और अत्यधिक शारीरिक शक्ति वाले भी। इसलिए उन्होंने अपने जीवनकाल में असुरों को पनपने नहीं दिया। परन्तु, जब उनका देहान्त हो गया, तब असुर सारी पृथिवी पर फैल गए। इन्द्र उनके राजा वृत्रासुर से लड़ना चाहते थे, परन्तु असमर्थ थे। तब उन्होंने दध्यङ् ऋषि को ढूंढना प्रारम्भ किया, तो ज्ञात हुआ कि दध्यङ् तो चल बसे, परन्तु उनकी अस्थियों से भी वृत्रासुर को परास्त किया जा सकता है। इसलिए उन्होंने दधीचि की हड्डियां ढूंढ कर, उनका वज्रायुध बनाया जिससे वे वृत्रासुर को मारने में सफल हुए। इस कथा के एक विकल्प में, जीवित दधीचि से ही देवों ने अस्थियां मांगीं। परम उदार होने के कारण, और देवों की सहायता करने की इच्छा से, दधीचि ने अपने प्राण स्वयमेव त्याग दिए।

अब वेदमन्त्र देखिए, साथ-साथ उनके गौढ़ रूप से प्रतीत होने वाले अर्थ भी-

तद्वां नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम्।

दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच।। ऋक्. १/११६/१२।।

(ऋषिः-कक्षीवान्। देवते-अश्विनौ।)

अर्थात् "हे अश्विकुमारो! दध्यङ् आथर्वण ने जिस मधुविद्या को अश्व के सिर से आपको उपदेश दिया था, उस उग्र कर्म को मैं (कोई ज्ञाता) सबके लाभ के लिए प्रकाशित करता हूं, जिस प्रकार बिजली वर्षा की सूचना देती है।" इस प्रकार इस मन्त्र में, बिल्कुल पौराणिक कथा के अनुसार, अश्विनी कुमारों को दध्यङ् आथर्वण के द्वारा, अश्व के सिर से, मधुविद्या का देना जैसे स्पटतः कहा गया है।

आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्वयं शिरः प्रत्यैरयतम्।
स वां मधु प्रवोचदृतायन् त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपि कक्ष्यं वामिति।। ऋक्. १/११७/२२।।

(ऋषिः- कक्षीवान्। देवते-अश्विनौ)

अर्थात् "हे अश्विकुमारो ! आथर्वण दधीचि के लिए आपने अश्व का सिर प्रत्यर्पित किया। (उस सिर से) उस ऋषि ने सत्य से परिपूर्ण होकर, आप दोनों को मधुविद्या और रहस्यमयी ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया।" इस प्रकार इस मन्त्र ने भी पौराणिक कथा की पुष्टि कर दी।

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः।
जघान नवतीर्नव।। ऋक्. १/८४/१३।।

(ऋषिः- राहुगणो गोतमः। देवता- इन्द्रः)

अर्थात् इन्द्र ने, स्तब्ध होकर दध्यङ् की अस्थियों से ९९ वृत्रों = असुरों को मारा।

यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत।
तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम्।। ऋक्. १/८०/१६।।

(ऋषिः - राहुगणो गोतमः। देवता- इन्द्रः)

अर्थात् जिस प्रकार पूर्व में इन्द्र से अथर्वा, मनु और दध्यङ् ने ब्रह्मविद्या और उक्थ प्राप्त किए, उसी प्रकार आप विद्वज्जन भी उसे प्राप्त करके स्वराज्य प्राप्त करें। ऋग्वेद के इस सूक्त के अन्य कुछ मन्त्रों में इन्द्र का वज्र के द्वारा वृत्र की हत्या भी बताई गई है।

तमु त्वा दध्यङ्ङृषि पुत्र ईधे अथर्वणः।
वृत्रहणं पुरन्दरम्।। यजु. ११/३३।।

(ऋषिः - भारद्वाजः। देवता- अग्निः)

अर्थात् "हे अग्ने! अथर्वा ऋषि के पुत्र दध्यङ् ऋषि ने आप को प्रज्वलित किया, जो आप वृत्र का हनन करने वाले और पुरियों को नष्ट करने वाले हैं।" इस प्रकार दधीचि के अथर्वा के पुत्र होने की भी पुष्टि हो गईं

उपर्युक्त ऋग्वेद के मन्त्रों के भाष्य में सायण ने भी पौराणिक कथाओं का आश्रय लिया है। दोनों ही कथाओं के अधिकांश भागों की इन मन्त्रों में पुष्टि प्रतीत होती दीखती है। यहां तक कि बृहदारण्यकोपनिषद् में भी जैसे इन कथाओं का उल्लेख मिलता है। यथा- इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच। तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत् 'तद्वां नरा... (ऋ. १/११६/१२)' इति।। बृ. उप. २/५/१६।।- अर्थात् उपर्युक्त मधुविद्या को दध्यङ् आथर्वण ने दोनों अश्वियों को बोला। उस 'मधु' को देखकर ऋषि ने यह मन्त्र बोला (आगे मन्त्र जैसे ऊपर दिया गया है)। (यहां हम यह भी पाते हैं कि ऋषि ने मन्त्र को देखकर बोला। परन्तु मन्त्र का ऋषि दध्यङ्ङाथर्वण नहीं है! इस विषय पर कभी और चर्चा करूंगी।) अगली कण्डिका में इन्हीं शब्दों का प्रयोग है, केवल मन्त्र उपर्युक्त ऋ. १/११७/२२ है।

तो क्या वेदों में ऐसी अविश्वसनीय वा ऐतिहासिक कथा का उल्लेख माना जाए? क्या पुराणों में अन्ततः वेद प्रतिपादित 'सत्य' ही दिया गया है? ये दो प्रश्न हम आगे देखते हैं, परन्तु यह तो स्थापित हो गया कि दधीचि की कथा वेदों से ही प्रेरित है और कथावस्तु मन्त्रों के गौण अर्थों के अनुसार है।

अब पहली कथा का गहन अर्थ यह है। 'दध्यङ्' के विषय में महर्षि दयानन्द लिखते हैं- दधति यैस्ते दधयः सद्गुणास्तानञ्चति प्रापयति वा सः- अर्थात् जिसके द्वारा धारण किया जाता है, उसे 'दधि' कहते हैं, अर्थात् सद्गुण क्योंकि उन्हीं से हम विद्या को धारण करते हैं। सद्गुणों (और विद्या) को जो प्राप्त करता और कराता है, वह दध्यङ् कहाता है। उपर्युक्त 'धृञ् धारणे' ही नहीं, दध्यङ् की उत्पत्ति 'ध्यै चिन्तायाम्' धातु से भी निरुक्त में की गई है, जब इसका अर्थ हुआ 'अत्यन्त ध्यान में मग्न होने वाला'। दोनों अर्थों को मिला कर, हमें दध्यङ् के विशेष अर्थ जान पड़ते हैं - वह जिसे ज्ञान को ध्यान से भी पाया है, केवल गुरु से ही नहीं, अर्थात् साक्षात् करने वाला परम ज्ञानी। इसी बात की ध्वनि हमें उपर्युक्त

ऋ. १/८०/१६ में इन्द्र के द्वारा दध्यङ् को विद्या के उपदेश में मिलती है। वहां 'इन्द्र' का अर्थ 'परमात्मा' है। दध्यङ् उस ऋषि को कहते हैं, जो सीधा परमात्मा की उपासना से ज्ञान प्राप्त करता है, जिसको योगदर्शन में इस प्रकार कहा गया है- **ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा** (१/४८)- अर्थात् समाधि की एक अवस्था में योगी को जैसे ज्ञान अपने आप प्राप्त होने लगता है।

'अथर्वा' = हिंसादिदोषरहितः, अर्थात् हिंसा आदि दोषों से जो रहित होता है, उसे अथर्वा कहते हैं। स्वार्थ में, जो ऐसी हिंसा आदि दोषों से रहित परम्परा में पोषित हुआ हो और उसकी रक्षा करता हो, उसे अथर्वा का 'पुत्र' 'आथर्वण' कहा गया है। और अथर्वा नाम परमात्मा का भी है, क्योंकि वह भी हिंसादि दोषरहित है। सो, जो उसके आदेशों का शब्दशः पालन करने वाला है, वह उसको पुत्र-समान प्रिय है। इस प्रकार निर्दोष और सम्पूर्ण विद्याओं को प्राप्त और उनको प्राप्त कराने वाले उत्कृष्ट गुरु को 'दध्यङ् आथर्वण' कहा गया है। यह किसी ऋषि-विशेष का अभिधेय नहीं है।

'अश्व' वह होता है जो शीघ्र गन्तव्य को प्राप्त करता है, व्याप्त हो जाता है। सो, जो आचार्य उच्च श्रेणी के होते हैं, उनको ऐसे शिष्यों का ग्रहण करना चाहिए जो कि मेधावी हों। मन्दबुद्धि छात्र के साथ आचार्य केवल अपना समय और परिश्रम नष्ट करेंगे। ऐसा शिष्य अश्व के समान 'अश्वी' कहा गया है, और जो उनका जोड़ा बताया गया है, वह शिष्य और शिष्या का संकेत है- स्त्रियों को अच्छे आचार्य/आचार्या ग्रहण करके विद्यादान किया करें। मेधावी शिष्य-शिष्याओं को भी गुरु को सावधानी से चुनना चाहिए- वह दध्यङ् आथर्वण होना चाहिए।

अब जब शिष्य आचार्य के पाए आए, तो आचार्य को उसकी बुद्धि की क्षमता और ज्ञान का परीक्षण करके, उसके अनुसार अपने को ढालना चाहिए, जिससे कि शिष्य को सरलता से समझ में आ जाए। क्योंकि यहां शिष्य को अश्वी कहा गया है, इसलिए, उपमा को आगे बढ़ाते हुए, ऐसा कहा गया है कि आचार्य ने भी अश्व का सिर धारण कर लिया। क्योंकि यह धारण शिष्य के कारण हुआ, इसलिए अश्वियों ने ही आचार्य का सिर बदल दिया, ऐसी कथा है। फिर जब छात्र गुरु के समतुल्य हो गए, तो गुरु अपने अनुसार उनसे बात कर सकते थे, बात को सरल कर के बताने की आवश्यकता नहीं रही, अर्थात् उनका सिर जैसे वापस मिल गया!

यहाँ जो मधुविद्या कही गई है, वह मोक्षविषयक विद्या है। इस विद्या के गुणगान वेदों और उपनिषदों में अनेकत्र पाए जाते हैं। यह परम विद्या कैसे कोई साधारण गुरु किसी साधरण शिष्य को दे सकता है? इसीलिए तो कहा गया- **आश्यर्चो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः।।** कठ. १/२/७।।- उस ब्रह्मविद्या का जानने वाला और कहने वाला आश्चर्यजनक है, और, उससे शिक्षित होकर, उस विद्या को प्राप्त करने वाला भी अत्यन्त कुशल होगा।

अब दूसरी कथा। जो इन्द्र ने दधीचि की अस्थियों से वज्रास्त्र बनाया, सो पं. शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ जी ने यहाँ एक त्रुटि दिखाई है। ऊपर दिए ऋ. १/८४/१३ में 'अस्थभिः' कहा गया है, न कि 'अस्थिभिः', जिसका अर्थ पण्डित जी ने अस्त्र-शस्त्र-ग्रन्थ आदि किया है, न कि हड्डियाँ। सो 'दधीचि के अस्थों द्वारा' का अर्थ हुआ 'विद्वानों द्वारा बनाए गए विविध अस्त्र, शस्त्र, ग्रन्थ आदि। इन अस्त्रों और विद्याओं से इन्द्र, अर्थात् राजा, राष्ट्र के शत्रुओं का और अपनी प्रजा के अज्ञानरूपी शत्रु का विनाश करता है। यही उसका कर्त्तव्य है- अपने राज्य में, विद्वानों को प्रोत्साहन देकर, उनसे नई तकनीक के शस्त्र बनवाना जिससे वह बाह्य शत्रु पर भारी पड़ सके; और उन विद्वानों को विद्या को बढ़ाने को प्रेरित करना, जिससे वे नए ग्रन्थादि लिखकर, विद्या को अपने मरणोपरान्त आने वाली पीढ़ियों के लिए भी

छोड़ जाएं। यही है दधीचि की मृत्यु का रहस्य।

जो ९९ असुरों (=शत्रुओं) के हनन की बात मन्त्र में कही गई है, वहाँ ९९ संख्या का भी अपना महत्व है। संख्याएं शून्य से लेकर ९ तक जाती है; उसके बायीं ओर खिसककर और बड़ी संख्या बनाती हैं, जैसे १ से ११ इसका अर्थ हुआ कि नव संख्या अपने सबसे बड़ी है। सो, '९९' में सम्पूर्णता का भाव है। अर्थात् विद्या और आविष्कार द्वारा प्रत्येक शत्रु का नाश किया जा सकता है।

महर्षि दयानन्द ने उपर्युक्त मन्त्रों के, अपने ऋषित्व द्वारा, अन्य ही अर्थ किए हैं। क्योंकि वेदमन्त्रों के अनेक अर्थ होते हैं, इसलिए इसमें कुछ बाधा नहीं है। दूसरी ओर, हम पुनः यह देखते हैं कि पुराणों के काल तक वेदों के ज्ञान का कितना ह्रास हो गया था कि उन्होंने मन्त्रों के सामान्य अर्थ करके उनको एक मनगढ़न्त कथा में बुन दिया। तीसरी बात यह भी सम्पुष्ट हो जाती है कि वेदों में ऋषि आदियों का इतिहास नहीं है, और सर्वत्र यौगिक अर्थ का ही ग्रहण करना चाहिए। वेद के अलंकार कभी-कभी कठिन हो सकते हैं। तब हमें ऋषियों के मार्गदर्शन की आवश्यकता अधिक होती है। वे ही हमें सही पथ पर ले जाते हैं। सायण आदियों द्वारा किए गए वेदभाष्य वेदों से हमें विमुख ही कर देते हैं। हमें भी वेद और अन्य ऋषिकृत ग्रन्थ धरोहर में मिले हैं, जिससे कि हम पुरातन उत्कृष्ट विद्या को पुनः नवीन कर सकते हैं, और संसार में पापों और कष्टों का नाश करके, सुख-शान्ति फैला सकते हैं।

❑❑

(पृष्ठ २ का शेष)

जाता है- सीताराम, लक्ष्मीनारायण, गौरीशंकर आदि। प्रत्येक पुरुष को विचार करना चाहिए कि हम सब मां की कोख से आये हैं, बाप की कोख से नहीं। सबने मां का दूध पिया है, बाप का नहीं। मां के स्नेह, प्यार से बच्चे का जो पालन होता है, वह पिता के स्नेह से नहीं। मां की बड़ी विलक्षण महिमा है। आप अपने सुख सुविधा के लिए लोभ में आकर मातृशक्ति का नाश करते हो, कन्या को पेट में ही मार देते हो यह बड़ा भारी पाप है। मातृशक्ति का इससे बड़ा अपमान नहीं हो सकता। गर्भ में जो बच्ची है, वह मातृशक्ति है, उस मातृशक्ति का गर्भ में ही निवारण कर दोगे, उसे जन्म ही नहीं लेने दोगे तो कहां जन्मोगे? किसका दूध पिओगे? गोदी कहां से लाओगे? किस जगह प्यार पाओगे? कौन हृदय से लगायेगा? आजकल स्त्री-पुरुष के समान अधिकार की बात कही जाती है परंतु वास्तव में स्त्रियों का समान अधिकार नहीं प्रत्युत उनका तो दर्जा बहुत ऊंचा है। क्योंकि यह मां है, ईश्वर के बाद दूसरा अगर किसी का स्थान है, तो वह मां है। साधुओं के बहुत मकान होते हैं पर वह घर नहीं कहलाते। घर तो स्त्री के कारण ही कहलाता है। इसलिए महर्षि व्यास जी महाभारत में लिखते हैं-

न गृहं गृहमित्याहुर्गुणी गृहमुच्यते

अर्थात् ईंट, पत्थर आदि से बने घर का नाम घर नहीं है। अपितु गृहणी ही घर को घर बनाती है। जरा आँख खोलो- नारी के सम्मान के लिए महाभारत का युद्ध हुआ, नारी जाति की रक्षा के लिए ही श्रीराम ने रावण से युद्ध किया, नारी जाति के सम्मान के लिए ही भीष्म जी ने अपने प्राण त्याग दिये पर शिखण्डी पर बाण नहीं चलाया। परंतु आज नारी को, मातृशक्ति को नष्ट करके उसको केवल भोग्य वस्तु बनाया जा रहा है। ऐसा घोर पाप मत करो। पाराशर स्मृति में लिखा है-

श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।

अर्थात् धर्म के सर्वस्व को सुनो और सुनकर उसे धारण करो। जो आचरण अपने से प्रतिकूल हो, उसको दूसरों के प्रति मत करो। कोई आपकी उन्नति रोक दे,

पढ़ना रोक दे, आपका जन्म रोक दे, आपका बढ़ना रोक दे, आपका भजन ध्यान रोक दे, आपके इष्ट की प्राप्ति रोक दे, तो उसका पाप लगेगा या पुण्य लगेगा? जरा विचार कीजिए कोई जीव मनुष्य जन्म में आ रहा है, उसमें रुकावट डाल देना, उसको जन्म ही नहीं लेने देना कितने बढ़े पाप की बात है। हां आप ब्रह्मचर्य का पालन करो तो आपका शरीर भी ठीक रहेगा और पाप भी नहीं लगेगा। परंतु भोग तो भोगेंगे, शरीर का नाश तो करेंगे पर संतान पैदा नहीं होने देंगे। यह बड़े भयंकर पतन की बात है। छोटे-छोटे जीवों को आप मार देते हो, वे बेचारे कुछ नहीं कर सकते, परंतु क्या भगवान के यहां न्याय नहीं है? निर्बल को नष्ट कर देना कितना बड़ा पाप है, महाभारत की कथा आप सुनो और पढ़ो। युद्ध में दूसरे को चेताते हैं कि सावधान हो जाओ मैं बाण चलाता हूं। शत्रु पर बाण भी चलाते हैं, तो पहले उसे सावधान करते हैं, फिर बाण चलाते हैं। जो बेचारे कुछ नहीं कर सकते, अपना बचाव भी नहीं कर सकते और आपका अनिष्ट भी नहीं कर सकते, ऐसे जीवों को नष्ट कर देना बड़ा भारी अन्याय अत्याचार है।

विचारशील पुरुषो! विचार करो कि आप अपना बुरा नहीं चाहते हो, तो दूसरों का बुरा करने का आपको क्या अधिकार है, अतः किसी के भी सुख में बाधा मत डालो, किसी के भी जन्म में बाधा मत डालो, किसी का भी भला करने में बाधा मत डालो। जो बात आप अपने लिए नहीं चाहते, उसको औरों के लिए भी मत करो। यह सबसे पहला धर्म है। जो जीव असमर्थ है कुछ नहीं कर सकता उसके साथ अत्याचार करना भगवान को मंजूर नहीं है। जो दूसरों का नाश करने के लिए समर्थ होते हैं, उनको गीता में भगवान श्रीकृष्ण असुर बताते हैं। कहते हैं-

प्रभवन्त्यग्रकर्माणः क्षयाय जगतोहिताः

जानबूझकर मूक, असमर्थ जीवों की हत्या करते हो और चाहते हो कि हमारा भला हो जाये, कैसे हो जायेगा? कल्याण कैसे हो जायेगा? श्रीराम ने शत्रु का भी अनहित नहीं किया-

अरिहुक अनमल कीन्हन रामा

अंगद को रावण के पास भेजा, तो उससे भी कहा-

काजु हमार तासु हित कोई

जो सीता को ले गया और मरने मारने को तैयार है, उसके पास भी दूत को इसलिए भेजते हैं कि काम तो हमारा बन जाये, हमें हमारी सीता मिल जाये परंतु रावण का हित हो जाये। यह बात किस संस्कृति में है, उस संस्कृति में जन्म लेना बंद कर देना कितना भारी अन्याय है। शास्त्र जिसको महापाप कहता है और जिसको आप जानते हो उसे बड़े जोरों से कर रहे हो और फिर चाहते हो, कि हमारी सद्गति हो जाये, तो सोचो कैसे हो सकती है, मेरे देश में दुर्गा, सीता, संतोषी आदि देवियों की पूजा तो नित्य प्रति मां बहिन करती हैं तथा करोड़ों लोग करते हैं परंतु यही यही मां बहिन अपने पेट के अंदर पलने वाली दुर्गा सीता की निर्मम तरीकों से हत्या कर देती हैं। विचार करो मां का स्थान बहुत ऊंचा है। किसी कवि ने बहुत ही सुंदर लिखा है-

ऊपर जिसका अंत नहीं, उसे आसमां कहते हैं।
जहां में जिसका अंत नहीं उसे मां कहते हैं।।

बार-बार विचार करो, सोचो और अपने विचारों को दृढ़ करो कि हम कभी अपने पेट में पलने वाली कन्या को भ्रूण हत्या के रूप में कत्ल नहीं करने, मां बनने वाली दुर्गा, सीता, संतोषी को कूड़ेदान में नहीं फेकेंगे और अपने जीवन को ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त करेंगे। किसी कवि ने बड़ा सुंदर लिखा है-

पहले तो मां ने तुझको नौ महीने पेट में ढोया।
सीने का दूध पिलाया तू जब-जब बन्दे रोया।।
बड़ा कर्ज है तुझ पर मां का, तेरा काम है कर्ज चुकाना।
जिसने तुझे जन्म दिया रे, दिल उसका नहीं दुःखाना।।

❑❑

अलगाववाद की जड़

(राजेशार्य आट्टा, मो ०६६६१२६१३१८)

प्रिय पाठकवृन्द! स्वतंत्रता के बाद भारत का नेतृत्व करने वाले नेताओं ने अपनी अति दयालुता अदूरदर्शिता या किसी और भावना के कारण देश को पुनः उन्हीं समस्याओं में धकेल दिया, जिनसे मुक्त होने के लिए देश का विभाजन स्वीकार करना पड़ा था। पाकिस्तान-समर्थकों की यूनिवर्सिटी (अलीगढ़) हमने यहीं रख ली और तो और पाकिस्तान के जनक मुहम्मद अली जिन्ना की फोटो भी हम वहाँ से नहीं हटा सके। देश को लगातार ७० वर्षों से सर सैयद अहमद खाँ, सर अल्लामा इकबाल जैसों का राष्ट्रवादी चेहरा दिखाया गया, जबकि इस यूनिवर्सिटी वालों ने पढ़ा-पढ़ाया है, उनका अलगाववादी मजहबी दर्शन, जिस पर चलकर जिन्ना ने पाकिस्तान का निर्माण करवाया था।

कुछ चालाक किस्म के लोग इन अलगाववादियों को निर्दोष सिद्ध करने के लिए हमें बहकाते रहे कि अंग्रेजों ने हिन्दू-मुस्लिम में फूट डाली, अन्यथा हम तो प्यार से रहते थे। अपना राज्य स्थिर करने के लिए वे तो सब कुछ करेंगे। गलती तो उनके जाल में फँसने वालों की है। क्या सैयद अहमद खाँ को पता नहीं था कि 'सर' की उपाधि से उन्हें गौरवान्वित करने, मुस्लिम कॉलेज के लिए जमीन व अनुदान देकर स्वयं आधारशिला रखने वाले अंग्रेज इसके बदले में उनसे क्या-क्या लेंगे? क्या इकबाल को पता नहीं था कि 'सर' बनने के बाद वे 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' नहीं बोल सकेंगे?

दोषियों को निर्दोष घोषित करने में गाँधी जी भी पीछे नहीं रहे। खिलाफत आन्दोलन को असफलता से उत्पन्न खीज को मिटाने के लिए मुसलमानों ने पंजाब, बंगाल और सीमा प्रान्त में हिन्दुओं पर अत्याचार किये। इस मोपला विद्रोह (केरल) में सैकड़ों हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बना लिया गया, हत्याएँ की गईं, स्त्रियों का अपमान किया गया। तब गाँधी जी यही कहते रहे कि मालाबार में हिन्दुओं को मुसलमान नहीं बनाया गया। अपने पत्र 'यंग इंडिया' में उन्होंने प्रकाशित किया कि केवल एक ही ऐसा घटना हुई है जबकि आर्य समाज की तरफ से पीड़ित हिन्दुओं की सहायता करने केरल पहुँचे महाशय खुशहालचन्द (महात्मा आनन्द स्वामी) ने भुक्तभोगियों से उस भयानक दृश्य का वर्णन सुनकर व उसका प्रभाव प्रत्यक्ष देखकर वहाँ शुद्धि का कार्य किया था, जिससे ८ अप्रेल १९२३ तक २६०० हिन्दुओं की शुद्धि हो चुकी थी।

स्वामी श्रद्धानन्द व महाशय राजपाल के शुद्धि व सत्य प्रकाशन आदि कार्यों का विरोध करके गाँधी जी मुस्लिमों को निर्दोष प्रचारित कर 'हत्यारा' बना गये। इसके बाद भी वे हत्यारों का बचाव करते रहे। फिर उनके नेतृत्व वाली कांग्रेस उनके पथ (मुस्लिम तुष्टीकरण) से कैसे विचलित हो सकती थी। २४ मार्च १९३१ को कानपुर में दंगे हुए, गणेश शंकर विद्यार्थी जैसा महान व्यक्ति भी क्रूर मजहबियों के चाकू-छुरों की भेंट चढ़ गया। कांग्रेस ने तीन हिन्दू व तीन मुस्लिम सदस्यों की दंगा जाँच समिति बनाई। भगवान दास की अध्यक्षता में इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि आरम्भ में इस्लाम भारत में बड़ी शान्ति से फैला। कासिम, गजनवी आदि की सेना में बहुत संख्या में हिन्दू थे। इससे उन्हें हिन्दुओं का दुश्मन नहीं माना जा सकता। तत्कालीन हिन्दू या मुस्लिम लेखकों ने ही मुस्लिम राजाओं को क्रूर, व मजहबी अत्याचार करने वाला लिखा है, वास्तव में वे उदार थे। महमूद गजनवी द्वारा सोमनाथ मन्दिर (किवाड़) लूटने की बात अंग्रेजों द्वारा हिन्दू-मुस्लिम में फूट डालने के लिए प्रचारित की गई। सर सैयद

अहमद खाँ का उदार दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया गया था, फिर भी समिति के ही एक सदस्य जफरुल मुल्क ने मतभेद की टिप्पणी में लिखा था-

मैं दूसरे देशों (एशियाई, यूरोपीय, अफ्रीकी, अमेरिकी) की संस्कृतियों तथा सभ्यताओं की मिलावट और मिश्रण से इस्लामी संस्कृति तथा सभ्यता को मुक्त रखने पर यकीन करता हूँ, मैं समिति की निम्नलिखित सिफारिशों से सहमत नहीं हो सकता :

१. मुसलमानों को उनके धार्मिक मामलों के मद्देनजर स्वीकार्य नहीं हो सकते, क्योंकि जिस तरह हिन्दू पर्व (होली, दीवाली आदि) मनाए जाते हैं, उसका मुसलमान अनुसरण नहीं कर सकते (हम इकट्ठे पर्व नहीं मना सकते)।

२. एक मुसलमान इस तरह की वेशभूषा धारण नहीं कर सकता या उसे करना भी नहीं चाहिए जो उसकी धार्मिक रीतियों (मसलन, नमाज) को पूरा करने में अटकाता हो और उसका रूप भी इस्लाम द्वारा बताए गए तरीके अनुरूप होना चाहिए।

३. पर्दा को पूरी तरह हटाने का अर्थ धर्म में हस्तक्षेप होगा, जिसे मुसलमानों द्वारा बर्दाश्त नहीं किया जा सकता और उन्हें करना भी नहीं चाहिए।

४. उपधारा (७) के अन्तर्गत की गई सिफारिश जो १८ वर्ष से कम के नाबालिग के धर्म परिवर्तन का निषेध करती है, इस्लामी कानून के विरुद्ध है और इसलिए मुसलमानों द्वारा स्वीकार नहीं की जा सकती। मैं इस बात से भी समहत नहीं हो सकता कि पिछले १० वर्षों के दौरान धर्म परिवर्तन के उचित मामले नहीं हैं... उन सबको रोक देना चाहिए।

५. मै इस विचार से कभी भी सहमत नहीं रहा कि अलग मतदाता समूह हिंदू-मुस्लिम मतभेद का स्रोत है या रहा है।

६. किसी भी तरीके या रूप में धन पर सूद की इस्लाम में मनाही होने के कारण मैं अपने सहधर्मियों को बैंकिंग या बीमा व्यापार में शामिल होने को नहीं कह सकता। उन्हें (इनसे) दूर रहने की सलाह देना मैं अपना दायित्व समझता हूँ।... (पृ० १६५-१६६, सांप्रदायिक समस्या)

इन्होंने हिन्दुओं को बैंकिंग, बीमा आदि छोड़ने और सब मन्दिर मूर्तियां छोड़कर केवल एक ईश्वर को मानने के लिए कहा है। यद्यपि एक ईश्वरवाद वैदिक सिद्धान्त है, पर इन्होंने ऐसा इसलिए कहा क्योंकि कुरान में लिखा है। अर्थात् हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए हिन्दू को कुरान की सभी बातें माननी होंगी, जबकि मुस्लिम हिन्दू ग्रन्थों (वेदादि) व मान्यताओं पर मतभेद प्रकट करेगा, तो ऐसी अवस्था में गाँधी जैसा 'महात्मा' ही हिन्दू-मुस्लिम-एकता की बात कर सकता है। जब २०वीं शताब्दी का इस्लाम इतना अलगाववादी है, तो जिसकी क्रूरता की कहानियाँ मुस्लिम लेखकों के ग्रन्थों में भरी पड़ी है, उस काल (सातवीं से अठारहवीं शताब्दी) के विषय में यह कहने से क्या लाभ कि भारत में इस्लाम, बड़ी शान्ति से फैला। जब तक वर्तमान शान्तिपूर्ण नहीं होगा, तब तक अकबर को महान और औरंगजेब को 'जिन्दापीर' कहने से कोई लाभ नहीं होना। क्या ही अच्छा होता यदि भारत में आने वाले अरब, तुर्क, अफगान आदि मुस्लिम व्यापारी, प्रचारक या हमलावर भारतीय बन जाते और भारत के (परिवर्तित) मुसलमानों ने इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड आदि के मुस्लिमों की तरह अरबी, फारसी की जगह अपने पूर्वजों (हिन्दुओं) की संस्कृति से प्रेम किया होता।

गाँधी जी हिन्दुओं को आश्वस्त करते रहे। उस विश्वास में दंगों में हिन्दुओं का विनाश होता रहा पर गाँधी जी ने कभी साम्प्रदायिक मुस्लिमों के अत्याचारों के विरुद्ध मुँह नहीं खोला। हैदराबाद नवाब के साम्प्रदायिक अत्याचारों के विरुद्ध जब आर्यसमाज ने सत्याग्रह किया, तो अनेक हिन्दू संगठनों ने सहयोग किया, पर गाँधी जी ने कहा- "आर्य समाज का यह सत्याग्रह बेवक्त की शाहनाई है। इससे हिन्दू-मुस्लिम एकता में फूट पड़ेगी।" तब कुँवर सुखलाल आर्य मुसाफिर ने गाँधी जी को कहा था-

ये क्या हैदराबाद में हो रहा है,

कि महशर का आलम बर्पा हो रहा है।
हमारी हिमायत न कर प्यारे गाँधी,
मगर इतना तो कह दे कि बुरा हो रहा है।।

गाँधी जी की हिन्दू-मुस्लिम एकता के बीच १९४६ में जिन्ना हजारों हिन्दुओं का कत्लेआम करवा गया। १९४७ का डरावना दृश्य देखकर भी हमारे नेता व इतिहासकार इस बात को नहीं समझे कि हिन्दुओं को सहनशीलता का पाठ पढ़ाने से मदरसों की मजहबी मानसिकता नहीं बदली जा सकती। धर्म के आधार पर देश बाँटकर भी अलगाववादियों को यहीं रखने, उन्हें मजहबी शिक्षा का प्रचार-प्रसार करने की स्वतन्त्रता देने व अल्पसंख्यक के नाम पर उन्हें विशेष्ज्ञ नागरिक बनाने वाले नेताओं को साम्प्रदायिक समस्या के समाधान कर्त्ता कहें या जन्मदाता? फिर उन्हीं अल्पसंख्यकों को खुश करने के लिए मुस्लिम शासकों के काले अतीत को चूने से ढकने में कुशल इतिहासकार नयी-नयी खोज (या कल्पना) करने में लगा दिये गये। बाबर-अकबर को महान विजेता व औरंगजेब को 'जिन्दापीर' प्रचारित करने वाले सेकुलर (उदारवादी) बन गये और महाराणा प्रताप, शिवाजी, बन्दा वैरागी व वीर हकीकतराय का नाम लेने वाले साम्प्रदायिक कहकर घृणित दृष्टि से देखे गये। केवल हिन्दुओं की धार्मिकता का विरोध करना उदारवाद हो गया।

हिन्दुओं के स्वाभिमान को जगाकर उन्हें इस्लाम व ईसाईयत के विरुद्ध सीना ठोककर खड़े होने योग्य बनाने वाले आर्य समाज के सिद्धान्त को इस्लाम के निकट व हिन्दुत्व से दूर बताया। स्वतंत्रता संग्राम में मुख्य भूमिका निभाने वाले आर्यसमाज की कार्यशैली (शुद्धि, दतिलोद्धार व शास्त्रार्थ) को साम्प्रदायिक टकराव पैदा करने वाली कहकर आर्यसमाज के बलिदानियों को उपेक्षित किया गया। देश ने तो ७० वर्ष से अलगाववादी इकबाल का गीत 'सारे जहाँ से अच्छा' गाया, पर अलगाववादियों के दिल में तो कुछ और ही बसा है, तभी तो कश्मीर में भारत के लोग भारत की सेना पर पत्थर फेंकते हैं, पाकिस्तानी आतंकवादियों को अपने घरों में शरण देते हैं; भारत की राजधानी में बैठकर मुफ्त का माल खाने वाले 'भारत को तोड़ने' की सौगन्ध खाते हैं, भारत के दुश्मन 'जिन्ना' के प्रति सम्मान प्रकट करते हैं, तो लगता है कि देश के शिक्षा तन्त्र में अनजाने या जानबूझकर कोई गलती हुई है। सभी देशवासियों को इस पर आत्ममन्थन करना चाहिये। क्या ही अच्छा हुआ होता यदि स्वतंत्रता के बाद नेताओं ने देश को धर्मनिरपेक्ष की बजाय राष्ट्रधर्मी बनाया होता। फिर कोई सम्प्रदायिक सांसद यह न कहता कि मैं भारत माता की जय नहीं बोलूँगा, क्योंकि यह हमारे संविधान (कुरान) में नहीं लिखा है। फिर कोई नमाज के बहाने सड़क पर बैठकर यातायात अवरुद्ध न करता। मन्दिर, मस्जिद, मकबरे, पीर आदि के नाम पर कोई सरकारी जमीन पर कब्जा न करता। गरीबों की मजबूरी का लाभ उठाकर सेवा की आड़ में कोई उनका धर्म परिवर्तन न करता। धर्म के नाम पर मनमानी प्रथाएं चलाकर कोई भोले लोगों की धार्मिक भावना का शोषण न करता। फिर कोई हत्या व बलात्कार के आरोपी धर्मगुरु के पक्ष में खड़ा होकर संसार के मानचित्र से भारत का नामोनिशान मिटाने की घोषणा न करता। धार्मिक या सामाजिक (पारिवारिक) कृत्यों के नाम पर कानफोडू संगीत बजाकर कोई पड़ोसियों को परेशान न करता। फिर त्यौहारों पर होने वाले जल, वायु व ध्वनि आदि के प्रदूषण को तेरा-मेरा प्रदूषण कहकर उसकी अनदेखी न करता। अपनी जाति-मजहब की माँगें मनवाने के लिए कोई राजकीय सम्पत्ति (बस, रेल, भवन आदि) व निजी सम्पत्ति को नुकसान न पहुँचाता। फिर अपने मजहब के आतंकवादी के प्रति हमारी सहानुभूति न होती। फिर इतिहासकार विदेशी हमलावरों को न्यायप्रिय कुशल प्रशासक सिद्ध करने के लिए स्वदेशी देशभक्त वीरों की उपेक्षा न करते। ऐसे शिक्षकों के पगचिह्नों पर चलकर भारत में पलने वाला कोई व्यक्ति फिर चीन (माओवाद), रूस (लेनिनवाद) या पाकिस्तान (इस्लाम) की जय बोलकर अन्तर्राष्ट्रवादी न बनता। फिर देशवासियों

(शेष पृष्ठ २७ पर)

आर्यसमाज और सर सैय्यद अहमद खान

(डॉ. विवेक आर्य, मो ०८०७६६८५५१८)

AMU अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय जिन्नाह की तस्वीर को लेकर चर्चा में है। इस अवसर पर इसके संस्थापक सर सैय्यद अहमद खान का नाम आना स्वाभाविक है। सर सैय्यद ने १८५७ के काल में अंग्रेजों का भरपूर सहयोग किया। जिसके बदले उन्हें अंग्रेजों ने सर आँखों पर उठा लिया। सर सैय्यद मुसलमानों को अंग्रेजी पढ़ने एवं अंग्रेजों के प्रति वफादारी दिखाने के पक्षधर थे। इसके लिए उन्होंने एक पुस्तक का लेखन भी किया था जिसका शीर्षक था "The Loyal Mohammadans of India'

आर्यसमाज के शीर्ष लोगों से सर सैय्यद अहमद खान के सम्बन्ध रहे। सर्वोपरि स्वामी दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द और लाला लाजपत राय आदि। स्वामी दयानन्द और सर सैय्यद अहमद खान की प्रथम भेंट अलीगढ़ में जनवरी १८७४ में हुई थी। उस समय वे वहां के न्यायाधीश थे। स्वामी जी के विचारों से वे प्रभावित हुए और दोनों के बीच आत्मीयता स्थापित हुई। दूसरी भेंट उसी वर्ष बनारस में हुई उस समय वे बनारस में जज के रूप में नियुक्त थे। उस समय उन्होंने स्वामी जी का एक व्याख्यान अपने बंगले पर करवाया था। उनके माध्यम से स्वामी जी की बनारस के न्यायाधीश शेक्सपियर से भी भेंट हुई। १८७७ में स्वामी दयानन्द ने दिल्ली में धर्म सम्मेलन का आयोजन किया था, जिसमें सर सैय्यद अहमद खान ने भाग लिया था। स्वामी जी के निधन पर सर सैय्यद ने अपने शोक सन्देश में अलीगढ़ इंस्टीट्यूट गजट १८ संख्या ७६ में लिखा था, "मैं स्वामी दयानन्द सरस्वती से भली-भांति परिचित था तथा मेरा उनके प्रति आदर भाव भी था। इसका कारण इतना ही है कि वे नितांत उच्चाशय तथा विद्वान् पुरुष थे कि जिनके प्रति प्रत्येक मतालम्बी को अपना सम्मान प्रकट करना चाहिए। वे इतने महान पुरुष थे कि जिनके तुल्य भारत में किसी अन्य का मिलना मुश्किल है। अतः उनकी मृत्यु का शोक मनाना प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। ऐसा अद्वितीय पुरुष हमारे बीच से उठ गया, यह नितांत शोकजनक है।" किसी प्रसंग में उन्होंने लिखा था- "स्वामी दयानन्द संस्कृत के गंभीर विद्वान् तथा वेदों के सतर्क अध्येता थे। एक उच्च विद्वान् होने के साथ साथ वे उच्च चरित्र तथा आध्यात्मिक वृत्ति के पुरुष भी थे। उनके अनुयायी उन्हें ईश्वर के तुल्य सम्मान देते थे तथा निश्चय ही वे उस सम्मान के पात्र भी थे। उन्होंने हिन्दू धर्म में अनेक सुधार किये। वे मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी थे तथा इस विषय को लेकर उनके पंडितों से अनेक शास्त्रार्थ भी हुए थे। जिनमें उन्होंने यह निर्विवाद रूप से सिद्ध किया था कि मूर्तिपूजा के लिये वेदों में स्वीकृति नहीं है। वे निराकार से भिन्न किसी अन्य ईश्वर की उपासना को अनुचित मानते थे। उन्होंने यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया था कि वेदों में जड़ तत्वों की पूजा का विधान नहीं है। मेरे विचार के अनुसार स्वामी जी प्रकृति को अनादि शाश्वत मानते थे तथा उसे माया कहकर भी सम्बोधित करते थे। यदि वे प्रकृति की अनादिता में विश्वास नहीं रखते तो संभवतः ईश्वर के स्वरुप को लेकर उनके तथा मुसलमानों के विचारों में कोई अंतर नहीं रह जाता।"

सर सैय्यद के अंतिम कथन का भाव इतना मात्र ही है कि ईश्वर के सम्बन्ध में इस्लाम की मान्यता तथा स्वामी दयानन्द की मान्यता में अधिक अंतर नहीं है। दोनों ही ईश्वर को निराकार तथा सर्वशक्तिमान मानते हैं। अंतर यदि कुछ है तो यही कि इस्लाम में जड़ प्रकृति (माद्दा) को भी ईश्वर से ही उत्पन्न माना गया

है जबकि स्वामी जी की धारणा के अनुसार ईश्वर तथा जीव की ही भांति प्रकृति भी अनादि, अनुत्पन्न तथा शाश्वत है।

(सन्दर्भ- महर्षि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी - प्रो. भवानीलाल भारतीय)

स्वामी श्रद्धानन्द (मुंशी राम) के जीवन में भी सर सैय्यद से सम्बन्ध मिलता है। मगर यह सम्बन्ध अन्य रूप में है। स्वामी जी अपनी जीवनी कल्याण मार्ग का पथिक में इस सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। उन दिनों संयुक्त प्रान्त में सर सैय्यद की तूती बोलती थी। स्वामी जी के पिताजी उस समय बलिया में पुलिस में कार्यरत थे। एक मुसलमान वकील के यहाँ एक लड़की मर गयी। मुखबिर ने कोतवाली में रपट दी कि लड़की मार डाली गयी। नायब कोतवाल ने लाश शव परीक्षण के लिए रुकवा दी। वकील सर सैय्यद के हामी थे। सर सैय्यद की सहायता से वकील ने कचजहरी में तहकीकात बंद करा दी और उनके पिताजी, नायब कोतवाल और मुखबिर पर फौजदारी नालिश दायर कर दी। स्वामी जी ने अंग्रेजी में पत्र आदि लिखे। पहले बनारस में मुकदमा चला फिर इलाहाबाद हाई कोर्ट में गया। इलाहाबाद हाई कोर्ट ने तीनों के कदम को सही करार दिया। तीनों निर्दोष सिद्ध हुए। इस घटना का मुंशी राम के जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। उनके मन में यह भावना स्थिर हो गई कि सर सैय्यद निष्पक्ष नहीं, अपितु मुसलमानों के हिमायती हैं। सर सैय्यद की मुस्लिम परस्ती को सिद्ध करने के लिए स्वामी जी ने कभी अपने पत्र सद्धर्म प्रचारक में भी लेख लिखा था।

लाला लाजपत राय के सर सैय्यद से सम्बन्ध जानने योग्य हैं। लाला जी के पिताजी सर सैय्यद के बड़े प्रशंसक थे। सर सैय्यद जहां अंग्रेजों के असमर्थक थे, वहीं उन्होंने भारतीय मुसलमानों को कांग्रेस से जुड़ने से रोकने का भरपूर प्रयास किया। लाला जी उस समय कांग्रेस के मंच से देशहित की बात करना चाहते थे। सर सैय्यद के विरोध में उन्होंने चार पत्र उर्दू में लिखे थे, जो कोहिनूर पत्रिका में छपे थे। १८८८ में कांग्रेस के इलाहाबाद सत्र से पहले कांग्रेस के संस्थापक ए.ओ. ह्यूम ने इन्हें अंग्रेजी में अनुवादित कर छपवाया था। उस दौर में ये पत्र अत्यंत लोकप्रिय हुए। इससे न केवल लाला जी ने देशव्यापी स्तर पर प्रशंसा प्राप्त की, अपितु उस काल में सर सैय्यद को गलत भी सिद्ध किया। ये पत्र आप इंटरनेट पर इस लिंक पर पढ़ सकते हैं।

http://www.columbia.edu/itc/mealac/pritchett/00islamlinks/txt_lajpatrai_1888/txt_lajpatrai_1888.html

पंडित गंगा प्रसाद उपाध्याय आर्यसमाज के दार्शनिक विद्वान् थे एवं इस्लाम के मर्मज्ञ भी। अपने सितम्बर १९४३ के सार्वदेशिक पत्रिका के अंक में सिंध में सत्यार्थ प्रकाश रक्षा आंदोलन में सत्यार्थ प्रकाश और इस्लाम शीर्षक से लेख लिखा था। इस लेख में सर सैय्यद की इस्लामिक मान्यताओं में स्वामी दयानन्द के चिंतन का प्रभाव विषय भी आया है। गंगा प्रसाद जी लिखते है, "स्वामी दयानन्द ने सैय्यद साहिब को बताया होगा कि हिन्दू धर्म की वर्तमान कुरीतियां पुराणों के कारण है।वेद में उनका उल्लेख नहीं है। इसी का अनुसरण सर सैय्यद ने किया। उन्होंने कहना आरम्भ किया कि हम शुद्ध कुरान को मानते हैं। हदीसों को नहीं। हदीसों में इस्लाम के सिद्धांत के विरुद्ध भी बहुत सामग्री है। सर सैय्यद के लेखों और आज के इस्लामिक साहित्य का यदि सौ वर्ष पहले के इस्लामी पुस्तकों से मिलान किया जाये, तो पता चलेगा कि सत्यार्थ प्रकाश की छाप उन पर लगी हुई है।"

सर सैय्यद शैतान के बारे में लिखते हैं-

"अब ख्याल करो कि कुरान में शैतान का लफ्ज़ या नाम आया है। मगर इसकी हकीकत या माहियत (स्वरूप) कुछ बखान नहीं हुई। दिन रात हमको शैतान बहकाता है और गुनाहों में फंसाता है। मगर वजूद

(शेष पृष्ठ २७ पर)

वेद एवं वैदिक साहित्य के वैदुष्य से सम्पन्न पं. राजवीर शास्त्री की शिक्षा-दीक्षा एवं शिक्षण आदि कार्य कार्य

(मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून, मो ०९४१२९८५१२१)

पं. राजीवर शास्त्री आर्य पिता की संस्कारित एवं प्रतिभा सम्पन्न सन्तान थे। आपकी माता पौराणिक वैष्णव परिवार से थी। आपका जन्म ४ अप्रैल, १९३८ को उत्तर प्रदेश के जनपद मेरठ निवासी श्री शिवचरण दास आर्य तथा माता श्रीमती मनसादेवी जी के घर हापुड़ के निकटवर्ती मुरादपुर जट्ट ग्राम में हुआ था। आप वैश्य सिंहल परिवार में जन्मे थे। आर्यसमाज के प्रमुख विद्वान् पं. रामचन्द्र देहलवी, कुंवर सुखलाल, ठाकुर अमर सिंह जी, स्वामी मुनीश्वरानन्द सरस्वती, पं. शान्ति प्रकाश, पं. बुद्धदेव मीरपुरी, पं. उदयवीर शास्त्री आदि आर्यसमाज के प्रचार के लिए इस क्षेत्र में आते रहते थे। इनके विचार सुनकर ही आपके पिता श्री शिवचरण दास आर्य निष्ठावान आर्यसमाजी बने थे। शास्त्री जी के तीन बड़े भाई और आपसे छोटी एक बहिन भी थी। शास्त्री जी के कुल पांच भाई और दो बहिने थीं जिसमें से दो भाई एवं एक बहिन की चेचक से बहुत पहले मृत्यु हो चुकी थी। पं. राजवीर शास्त्री जी का बचपन में घर का नाम राजकुमार था। राजवीर नाम आपको गुरुकुल झज्जर में अध्ययन के दौरान स्वामी ओमानन्द जी और व्याकरण के आचार्य विश्वप्रिय शास्त्री जी से मिला था। शास्त्री जी की प्रारम्भिक शिक्षा जन्म ग्राम के विद्यालय में हुई। इसके बाद सन् १९४६ में जब आप ७-८ वर्ष के थे, आपको दयानन्द वेद विद्यालय गुरुकुल, गौतमनगर, दिल्ली में प्रविष्ट कराया गया। यह गुरुकुल विद्यालय स्वामी सच्चिदानन्द योगी जी द्वारा स्थापित था और इसे चलाते भी आप थे। स्वामी सच्चिदानन्द योगी का पूर्वनाम श्री राजेन्द्र नाथ शास्त्री था। आप स्वामी दयानन्द जी के सहपाठी पं. उदय भान प्रकाश के शिष्य थे। आपको आपको सिद्धान्तों के प्रति गहरी निष्ठा स्वामी दयानन्द और अपने विद्या गुरु से मिली थी। बताते हैं कि गुरुकुल में एक कुआं था, जिसमें शास्त्री जी गिर गये थे। लोगों को पता चल गया तो बड़ी कठिनता से आपको बाहर निकाला गया था।

गुरुकुल गौतमनगर, दिल्ली में अध्ययन के दिनों में स्वामी ओमानन्द जी, जो पहले इसी गुरुकुल में पढ़े थे, उन दिनों गुरुकुल झज्जर का संचालन करते थे। आपकी दृष्टि ब्रह्मचारी राजकुमार पर पड़ी तो आप उनके व्यक्तित्व व गुणों की ओर आकर्षित हुए। आपने ब्रह्मचारी राजकुमार को अपने गुरुकुल झज्जर में पढ़ाने के लिए आपके पिता को सहमत कर लिया। स्वामी ओमानन्द जी ने उन्हें आश्वासन दिया था कि वह राजकुमार का शास्त्रों का विद्वान आचार्य बनायेंगे। यह भी जान लें कि गुरुकुल झज्जर की स्थापना स्वामी श्रद्धानन्द जी की प्रेरणा से पं. विश्वम्भरदास जी ने की थी। इस गुरुकुल के प्रथम आचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी थे। गुरुकुल झज्जर में रहकर राजवीर जी ने सन् १९५४ तक पूरे मनोयोग से वेद वेदांगों का गहन अध्ययन किया। आपने गुरुकुल में सरकारी परीक्षायें न देकर परम्परागत शास्त्रीय अध्ययन किया। आपके आचार्यों में आचार्य भगवान देव अर्थात् स्वामी ओमानन्द जी के आग्रह पर उन दिनों कविवर मेधाव्रत, आचार्य उदयवीर शास्त्री, स्वामी ब्रह्ममुनि, स्वामी वेदानन्द दयानन्द तीर्थ, स्वामी व्रतानन्द, स्वामी आत्मानन्द आदि वैदिक विद्वान् गुरूकुल झज्जर में आकर ब्रह्मचारियों को अध्ययन कराते थे। इन सभी से अध्ययन का सौभाग्य पं. राजवीर शास्त्री जी को मिला। वैयाकरण आचार्य शिवपूजन जी, योगदर्शन के ख्याति प्राप्त विद्वान् पं. महामुनि जी, दर्शनाचार्य पं. ईश्वरचन्द्र जी और वैदिक विद्वान् पं. दामोदर सातवलेकर जी आदि ने गुरुकुल

झज्जर में अध्ययन करने के दिनों में राजवीर शास्त्री जी की परीक्षा ली थी। पं. राजवीर शास्त्री जी ने पौरोहित्य कर्म की शिक्षा प्रसिद्ध कर्मकाण्डी विद्वान् स्वामी मुनीश्वरानन्द सरस्वती से ली थी।

स्वामी दयानन्द जी के शिष्य पं. भीमसेन शर्मा थे और शर्मा जी के पुत्र डॉ. हरिदत्त शास्त्री थे, जिन्हें शास्त्री जी गुरु तुल्य आदर देते थे। डॉ. हरिदत्त शास्त्री ने पं. राजवीर जी की आगरा विश्व विद्यालय से एम. ए. की परीक्षा दिलाने में सहायता की थी। कारण था कि नये मेरठ विश्वविद्यालय की स्थापना और मेरठ क्षेत्र के विद्यार्थियों को आगरा के स्थान पर मेरठ विश्वविद्यालय सम्बद्ध किया गया था। डॉ. हरिदत्त शास्त्री जी की सहायता से पं. राजवीर शास्त्री एम.ए. की परीक्षा दे सके जिस कारण वह उनके प्रति गुरू के समान आदर भाव रखते थे। जिन दिनों राजवीर जी गुरुकुल झज्जर में पढ़ते थे, उन दिनों पं. यज्ञदेव जी, पं. वेदव्रत मीमांसक, पं. सुदर्शनदेव जी, श्री सत्यवीर जी, श्री मनुदेव जी (स्वामी सत्यपति जी), श्री भीमसेन जी, श्री अतरसिंह जी, श्री जयदेव जी, श्री जगदीश जी आदि आपके सहपाठी थे। पं. राजवीर शास्त्री ने अनेक शास्त्रीय परीक्षायें उत्तीण की थीं। कुछ के नाम हैं-सिद्धान्त रत्न सन् १९५०, सिद्धान्त भास्कर सन् १९५१, उपनिषद् विषय अलंकार परीक्षा सन् १९५२, संस्कृतिविज्ञ परीक्षा सन् १९५२, सिद्धान्त शास्त्री सन् १९५२, संस्कृत प्रवीण परीक्षा सन् १९५३ में तथा छन्दोलंकार शास्त्र साहित्याचार्य सन् १९५४ में।

उपर्युक्त परीक्षाओं के अतिरिक्त शास्त्री जी ने सन् १९६१ में वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय से शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १९६२ में पंजाब विश्वविद्यालय से आपने व्याकरणाचार्य किया। सन् १९६४ में वाराणसी के वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय से आचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की। उपर्युक्त परीक्षाओं के अतिरिक्त पं. राजवीर शास्त्री जी ने पंजाब विश्व-विद्यालय से विशारद (संस्कृत में उच्च दक्षता), शास्त्री (संस्कृत ऑनर्स) एवं प्रभाकर (हिन्दी ऑनर्स) क्रमशः सन् १९५५, १९५६ एवं १९५८ में उत्तीर्ण की। शास्त्री जी ने काशी राष्ट्रीय संस्कृत महाविद्यालय से सम्पूर्ण मध्यमा सन् १९५६ में उत्तीर्ण की। पंजाब के शिक्षा विभाग से सन् १९५८ में आपने लैंग्वेज टीचर्स कोर्स भी पास किया। एम.ए. (संस्कृत) की उपाधि आपने आगरा/मेरठ विश्वविद्यालयों से सन् १९६७ में उत्तीर्ण की। इस प्रकार पं. राजवीर शास्त्री जी ने परम्परागत अधीत शास्त्र सहित आधुनिक परीक्षा प्रणाली दोनों शिक्षा पद्धतियों से संस्कृत की उच्च्य स्तरीय शिक्षा प्राप्त की।

गुरूकुल झज्जर से सन् १९५८ में शिक्षा पूरी करने के बाद यहीं पर सन् १९६० तक आपने अध्यापन कार्य किया। पंजाब के शिक्षा विभाग में भी सन् १९६० से १९६७ तक संस्कृत अध्यापक के पद पर आप कार्यरत रहे। शास्त्री जी ने झज्जर के ग्राम बेरी में शासकीय विद्यालय में भी अध्यापन कार्य किया। इन्हीं दिनों आप ने स्वामी रामदेव जी के विद्यागुरू महात्मा बलदेव जी तथा इन्द्रदेव मेधार्थी परवर्ती नाम स्वामी इन्द्रवेश सांसद को व्याकरण व महाभाष्य पढ़ाया। सन् १९६७ से पं. राजवीर शास्त्री जी ने दिल्ली प्रशासन में संस्कृत शिक्षा के पद पर कार्यरत रहे और यहीं से सन् १९९८ में सेवा निवृत्त हुए।

शास्त्री जी का घर-संसारः

पं. राजवीर शास्त्री जी का विवाह सन् १९६२ में नांगल-देहरादून निवासी एक धार्मिक, ईश्वर विश्वासी तथा गृह कार्यों में निपुण देवी पुष्पलता जी के साथ हुआ था। आपने गृहस्थ जीवन का आदर्श रूप में पालन करते हुए आर्य अतिथियों की सेवा के साथ अपनी सन्तानों को सुयोग्य बनाया। आपकी चार सन्तानें क्रमशः विनय कुमार आर्य, संजय कुमार, आयु. अर्चना और अजय कुमार हैं। सभी बच्चे उच्च शिक्षित एवं विवाहित हैं। बड़े पुत्र विनय एम.एस.सी. (जीव विज्ञान) एवं बी.एड. हैं और दिल्ली के एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में अपनी सेवायें दे रहे हैं। दूसरे पुत्र श्री संजय

कुमार ने वाणिज्य में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की हुई है। आप कपड़े का व्यवसाय करते हैं। आपकी पुत्री आयु. अर्चना ने स्नातकोत्तर उपाधि सहित बी.एड. किया हुआ है और आप एक विद्यालय में शिक्षिका हैं। चौथी सन्तान श्री अजय कुमार चार्टेड एकाउण्टेण्ट हैं और केन्द्र सरकार के अधीन अधिकारी हैं। आपकी सभी पुत्र वधुएं एवं दामाद भी आर्य संस्कारों से सुभूषित हैं। आपकी पुत्र वधुएं क्रमशः श्रीमती रेखा, श्रीमती सारिका एवं श्रीमती रश्मि हैं। आप तीनों ने शास्त्री जी की रुग्णावस्था में पूरी तन्मयता से सेवा की है। तीनों पुत्रों के साथ भी शास्त्री जी के आदर्श पिता-पुत्र के संबंध रहे हैं। शास्त्री जी को अपने गृहस्थ जीवन में जब जितना समय मिलता था, उसमें वह अपनी चारों सन्तानों से निकटता बना कर रखते थे।

हमने उपर्युक्त पंक्तियों में वेद एवं शास्त्रों के प्रमाणित विद्वान्, वैदिक कोच, योगदर्शन पर व्यास भाष्य पर हिन्दी टीका सहित अनेकानेक ग्रन्थों के सम्पादक पं. राजवीर शास्त्री जी के पैतृक परिवार, शिक्षा, उनके गृहस्थ, अध्ययन-अध्यापन सहित शिक्षण कार्यों की चर्चा की है। अन्य अवसरों पर हम शास्त्री जी के जीवन के कुछ अन्य पहलुओं की भी चर्चा करेंगे। इस लेख को यहीं पर विराम देते हैं। ओ३म् शम्।

❑❑

(पृष्ठ २४ का शेष)

खारिजी महसूस नहीं होता। बल्कि हम अपनी ही सफेद दाढ़ी अपने हाथ में और अपना ही गाल लाल देखते हैं। आयतों को मिलाओ और गौर करो कि यह सब अलंकार है। इनसे मानीहकीकी मुराद नहीं है।"

जिन्होंने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में अहिल्या की कथा पढ़ी है, वो कह सकते हैं कि सर सैय्यद पर ऋषि का कितना प्रभाव था। सर सैय्यद अगर मुस्लिम कौम की राजनीति परिस्थिति सुधारने में न लगे रहते, तो अवश्य हमसे बहुत आगे बढ़ गए होते। जैसे पुराणों में निष्कलंक अवतार का उल्लेख है। उसी प्रकार से इस्लाम में मेंहदी अखिरुज जमा का भी है। इसके विषय में सर सैय्यद लिखते हैं -

"उन गलत किस्सों में से, जो मुसलमानों का ही मशहूर है, एक किस्सा इमाम मेंहदी अखिरूज जमा के पैदा होने का है। इस किस्से की बहुत से हदीसें लिखित हैं मगर सब झूंठी और बनावटी हैं।"

सर सैय्यद के धार्मिक चिंतन पर स्वामी दयानन्द के क्रांतिकारी चिंतनल का परिणाम स्पष्ट दीखता है। आर्यसमाज और उनसे शीर्ष नेताओं के साथ उनके खट्टे-मीठे सम्बन्ध रहे। पाठकों के ज्ञानवर्धन हेतु यह लेख प्रकाशित किया गया है।

❑❑

(पृष्ठ २२ का शेष)

को ऐसी भ्रान्तियों से सावधान करने के लिए 'इतिहासकार की कलाकारी' जैसे लेख लिखने की आवश्यकता न होती।

फिर भारत के मुसलमानों को पढ़ाये जाने योग्य सहनशीलता का पाठ (सोमनाथ मन्दिर लूटने वाले महमूद गजनवी की सेना में ५०% हिन्दू और १२ हिन्दू सेनापति थे) हिन्दुओं को न पढ़ाया जाता। फिर मेरे पालन पोषण के लिए ही देश मेरा न होता, अपितु देश की सर्वविध उन्नति के लिए मैं भी देश का होता। चाहे किसी भी मजहब का हो, देश का मित्र मेरा मित्र और देश का शत्रु मेरा शत्रु होता। फिर साम्प्रदायिक सौहार्द बनाने के लिए देश के अतीत से छेड़छाड़ न करनी पड़ती।

अब्दुल कलाम से देशभक्ति का हमने पाठ पढ़ा होता।

जिन्ना की तस्वीर बचाने ए.एम.यू. नहीं खड़ा होता।।

अगले अंकों में इसी विषय पर चर्चा की जाएगी।

❑❑

आर./आर. नं० १६३३०/६७		रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2018-20
Post in Delhi R.M.S	जून 2018	लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१८-२०
०५-११/०६/२०१८		Licenced to post without prepayment
भार- ४० ग्राम		Licence No. U (DN) 144/2018-20

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।

२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।

३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।

४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।

५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6
Ph. :011-43781191, 09650622778
E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.....................................

ग्राम.....................................

डा0 ....

जिला.....................................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।